ੴ वाहिगुरू जी की फतहि ॥

141

३३ सवैये सटीक

श्री मुखवाक पातशाही १०

सिख मिशनरी कालज (रजि:)
लुधियाना

ੴ ३३ सवैये स्टीक

श्री मुखवाक पातशाही १०

प्रकाशक

सिख मिशनरी कॉलेज (रजिः)

1051, कूचा 14, फील्ड गंज, लुधियाना - 8 फोन : 663452

सब आफिस : A-143, फतहि नगर, नई दिल्ली - 110 018

३३ सवैये स्टीक

श्री मुखवाक पातशाही १०

लेखक

लिटरेरी कमेटी

सिख मिशनरी कालेज (रजि:) लुधियाना

प्रकाशक

सिख मिशनरी कालेज

1051, कूचा 14, फील्ड गंज, लुधियाना-141 008

सब आफिस : A-143, फतहि नगर, नई दिल्ली - 110 018

लेजर टाइपसैटिंग : ऐडवांसड कम्प्यूटरज, अड्डा होशियारपुर, जालन्धर। फोन : 214308

प्रिन्टर : ब्राईट प्रिंटरज, जालन्धर।

श्री गुरु गोविन्द सिंघ

रचना

"तेतीस सवैये"

प्रस्तावना

तेतीस सवैये श्री गुरु गोविन्द सिंघ जी की एक महान् रचना है। आपकी यह वाणी "दशम ग्रन्थ" के नाम से प्रचलित एक ग्रन्थ में संगृहीत है। सम्पूर्ण "दशम ग्रन्थ" तो गुरु गोविन्द सिंघ जी की रचना नहीं है। इसमें संकलित अधिकतर रचनाएं अनेकों कवियों की हैं, जिनमें से बहुतायत उनकी है जो सिख मत के अनुयायी नहीं थे। सिख मत के प्रचार व प्रसार के लिए गुरु गोविन्द सिंघ जी के बाद कभी भी कोई केन्द्रीय और संगठित यत्न नहीं किया जा सका। फलस्वरूप, कई अल्प-ज्ञानी प्रचारकों और सिख मत के विरोधी मतावलम्बियों ने सम्पूर्ण दशम ग्रन्थ को गुरु गोविन्द सिंघ जी द्वारा रचित घोषित करने की कुचेष्टा की, जिस कारण सिख धर्म के सिद्धान्तों के बारे में स्पष्टता का आना मुश्किल हो गया और उसके बारे में कई गल्त-फहमियां फैलाई जाने लगीं।

अब धीरे-धीरे बात साफ़ होने लगी है और अधिकतर विद्वान जापु साहिब, अकाल स्तुति, तेतीस सवैये, जफ़रनामा और खालसा महिमा मात्र को कलगीधर स्वामी की रचना मानते हैं और अन्य रचनाओं के रचियता विभिन्न प्रकार के कवियों को ही माना जा रहा है जिनमें कुछ तो निश्चयपूर्वक सिख मत के विरोधी हैं। सिख मत के केन्द्रीय संगठन को चाहिये कि वह आगे आकर अब निर्णयपूर्वक यह घोषणा कर दे कि वास्तव में गुरु गोविन्द सिंघ जी की रचनाएं कौन-कौन सी हैं, ताकि गुरुदेव की वास्तविक बाणी को छोड़कर अन्य जितनी रचनाएं हैं, उनके साथ हम केवल उतना सम्बन्ध ही रखें जिसकी कि वे अधिकारिणी हैं।

यहां यह बात अंकित करना भी अनुचित न होगा कि हमें समझ लेना चाहिये कि किसी व्यक्ति की महानता उसकी साहित्यिक रचनाओं के कलेवर की विशालता मात्र से नहीं होती, बल्कि उसकी रचना में दर्शाए उत्तम विचारों के स्तर के आधार पर होती है। नीचे लिखी कुछ पंक्तियों में श्री गुरु गोविन्द सिंघ जी द्वारा दर्शाए गये वे विचार अंकित किये गये हैं, जो उनकी महान रचना "तेतीस सवैये" में निरुपण किये गये हैं।

(1) **खालसा अथवा आदर्श मनुष्य** :—खालसा अथवा आदर्श मनुष्य वही है जिसके हृदय में ईश्वर के सत्य ज्ञान का सम्पूर्ण प्रकाश हो और जो एक ईश्वर के अतिरिक्त किसी और से प्रेम न करे और जो मढ़ियों, मठों और विभिन्न प्रकार के तीर्थों में आस्था न रखे।

(2) **ईश्वर के गुण** :—ईश्वर के गुण गिनाए नहीं जा सकते। उसमें अनन्त गुण हैं। वह आदि अनादि, अगाध, अजय, सत्य-व्रत, सदैव सत्य, नाश-रहित, उज्जवल, अनाहद, द्वेष-रहित, भेष-रहित, भय-रहित, दयालु व कृपालु है। सम्पूर्ण धर्म-ग्रन्थ सब विद्वान, और देवी-देवता मिल कर भी ईश्वर के सम्पूर्ण गुणों का वर्णन नहीं कर सकते। वह अच्युत, अयोनि, अजन्मा, वृद्धावस्था-रहित परम पवित्र, परे से परे, स्वतः प्रकाशित, शुद्ध प्रकाश देने वाला, प्रत्येक हृदय में निवास रखने वाला जुगादि, सर्वत्र-विद्यमान, सब जीवों का पालक, सुन्दरत्तम और शिरोमणि है। परमेश्वर अलेख, अजेय, तीनों कालों में सत्य और अभेद है जिसके समस्त गुणों का वर्णन सब धर्म ग्रन्थ भी मिल कर नहीं कर सकते। सब धर्म-ग्रन्थों का आधार ईश्वर स्वयं है। देवों, दैत्यों और विभिन्न जातियों, नस्लों के जीवों का रचियता स्वयं अदृष्ट प्रभु ही है। धर्म-ग्रन्थों और धार्मिक मर्मज्ञों ने अनेकों प्रकार से ईश्वर और धर्म का निरूपण किया है परन्तु वास्तव में उसके 'नाम-सिमरण' के मार्ग को अपना कर अथवा उससे सच्चा प्रेम कर के ही प्राणी इस भवसागर को तार सके हैं। "नाम-सिमरण" ही हमारे मत की आधारशिला है। ऐसे परमेश्वर को भूलना मूर्खता है।

(3) **मूर्ति पूजा** :—ईश्वर और उसके सत्य ज्ञान को छोड़ कर निरर्थक मूर्ति-पूजा में आस्था रखना फलहीन है। पाषाणों में परमेश्वर नहीं है, सत्य प्रभु की पूजा करो, जो सब पापों से छुटकारा दिलाए।

(4) **मन्दिर-मस्जिद आदि धर्म-स्थान** :—ईश्वर केवल मन्दिर या मस्जिद आदि

धर्म स्थानों में ही नहीं, सर्वत्र-विद्यमान है। मन्दिर या मस्जिद में भेद करना किसी भांति उचित नहीं।

(5) **श्री राम, श्री कृष्ण, शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि** :—श्री राम, श्री कृष्ण, विष्णु, शिव और ब्रह्मा आदि महान् व्यक्ति, महान् पुरुष या विशेष व्यक्तित्व तो भले ही माने जाएं, वे स्वयं परमेश्वर नहीं कहला सकते। जो व्यक्ति माता के गर्भ से पैदा हुआ और समय पाकर पांच तत्वों की देह का त्याग कर गया, वह ईश्वर कैसे ? ईश्वर तो सब सृष्टि का रचियता, पालक और क्षय-कर्त्ता है। उसकी शक्तियों और उसके सत्यों की थाह कोई नहीं ले सकता।

(6) **सच्चा इष्ट** :—देवी, देवताओं, अवतारों और विशिष्ट व्यक्तियों में ध्यान लगाने के स्थान पर मनुष्य उस ईश्वर को सच्चा इष्ट मान कर उसमें ध्यान लगाए जो भूतकाल में भी सत्य था, वर्तमान में भी सत्य है और भविष्य में भी सत्य रहेगा।

(7) **गुरु की महिमा** :—अनेकों विद्वान, अवतार, देवी-देवता, तपस्वी, योगी, सिद्ध और विभिन्न धर्म-ग्रन्थ मिल कर भी जिस ईश्वर का पूर्ण भेद नहीं पा सके, सच्चा सतगुरु ऐसे ईश्वर का ज्ञान देने का सामर्थ्य रखता है।

(8) **पाखण्ड कर्म और सच्चा प्रेम** :—शरीर पर राख मल कर, जटाएं धारण करके, नाखून बढ़ा कर और पाखण्ड समाधियां लगा कर केवल जनता को ठगा जाता है, ईश्वर की प्राप्ति तो उसके साथ सच्चा प्रेम किए बिना सम्भव नहीं। पाखण्ड कार्यों और विशिष्ट वेश-भूषाओं द्वारा लोगों को धोखा दिया जा सकता है, अलेख प्रभु को नहीं पाया जा सकता।

(9) **शरीरधारी मृत्यु का जाल** :—जो भी शरीर धारण करके संसार में पैदा हुआ है, वह मृत्यु के जाल में अवश्य बन्धा हुआ है। यहां तक कि श्री राम, हज़रत मुहम्मद, देवता, दैत्य अवतार, ब्रह्मा, शिव आदि हस्तियां भी शरीर रूप में सदा कायम नहीं रहीं।

(10) **ईश्वर के भजन को छोड़कर माया-जाल में फंसना** :—ईश्वर के भजन या चिन्तन को छोड़ कर माया जाल में फंसना ऐसा ही है जैसे बढ़िया हाथी या घोड़े की सवारी छोड़ कर कोई व्यक्ति हेच प्राणी गधे की सवारी करना पसन्द करे। वेद-कतेब आदि धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ कर भी ईश्वर को न पहचानना, केवल

कुछ विशेष स्थानों में ही ईश्वर के अस्तित्व को मानना, पाषाण मूर्तियों और मढ़ियों के आगे सिर झुकाते फिरना और भगवान् भजन में चित्त न लगाना भी माया-जाल में फंसना ही है।

(11) साम्प्रदायिकता में डूबे धार्मिक नेता व अनुयायी :—विभिन्न मत मतान्तरों के धार्मिक नेता व उनके अनुयायी साम्प्रदायिकता में बुरी तरह डूबे हुए हैं। वे अपने-अपने मत के अनुयायियों की गिनती बढ़ाने में लगे हुए हैं और इनमें से कई ईश्वरीय ज्ञान देने के स्थान पर अपने आधारहीन सिद्धान्तों में ही लोगों को उलझा रहे हैं। धार्मिक नेताओं में से अधिकांश का लक्ष्य तो भोली-भाली जनता से धन बटोरना मात्र ही है। ये नेता बाह्याचार के पाखण्ड करके मानों आंखों में तेल डाल कर आंसू बहा कर दिखा रहे हैं और सदा धनवान अनुयायियों की ताक में रहते हैं। धनहीन अनुयायी के साथ सम्बन्ध रखना उनके कार्यक्रम में नहीं आता क्योंकि जनता को मूर्ख बना कर अपने लिए धन बटोरना ही उनका ध्येय है। उनकी समाधियों के नाटक बगुले का अनुकरण मात्र हैं और नम्रता-प्रदर्शन भी महज़ धोखा है।

(12) धन, जायदाद और विभिन्न रिश्ते नश्वर हैं :—धन, जायदाद आदि पर अधिकार जमाए रखने के लिये मनुष्य अनेक पाप करता है। धन, जायदाद आदि पर अधिकार वास्तव में क्षण-भंगर है। शरीर का अन्त होते ही ये सब चीज़ें पराई हो जाती हैं और मनुष्य के साथ कुछ भी नहीं जा सकता। मनुष्य मोह माया में फंसा होने के कारण स्त्री, पुत्र, मित्र आदि में बुरी तरह आसक्त हो कर अनेकों पाप कर्म करता है, जबकि स्पष्टत: ये सम्बन्धी केवल जीवनकाल तक ही मनुष्य का साथ निभा सकते हैं और कई बार तो इससे पहले ही उसका साथ छोड़ जाते हैं। मनुष्य को अपने वास्तविक लक्ष्य 'ईश्वर-चिन्तन' को अपनाना चाहिए।

ੴ वाहिगुरु जी की फ़तेह

सवैये पातशाही १०

(1)

जागत जोति जपै निस बासुर, एक बिना मन नैक न आनै ॥
पूरन प्रेम प्रतीत सजै, व्रत गौर मढ़ी मट्ठ भूल न मानै ॥
तीरथ दान दया तप संजम, एक बिना नहिं एक पछानै ॥
पूरन जोति जगै घट में, तब खालस ताहि नखालस जानै ॥

शब्दार्थ :—जागत जोति = जागृत और प्रकाश रूप । **निस बासुर** = रात-दिन, सदैव । **एक बिना** = एक मात्र परमेश्वर के बिना । **नैक** = थोड़ा-सा भी । **सजै** = सजाता है । **गौर** = कब्र । **मढ़ी** = मर गए प्राणी की राख पर बनायी गई यादगार । **तीरथ** = तीर्थ । **दया** = दया के नाम पर इस्तेमाल किया जा रहा वह धार्मिक साधन, जिसका वास्तविक दया के साथ कोई सम्बन्ध नहीं ; अहिंसा के नाम से अपनाया गया गैर-कुदरती साधन, जैसे जीव हत्या के भय से पानी को अत्याधिक छान कर इस्तेमल करना ; मुख और नासिका पर पट्टी लपेटना ताकि पानी पीने अथवा सांस लेने से सूक्ष्म और अदृश्य कीटाणु या रोगाणु न मर जाएं ; जूता आदि न पहन कर नग्न पांव भ्रमण करना ताकि पैरों तले कोई कीट या जीव न मर जाए । **तप** = धार्मिक समझे जाने वाला वह गैर-कुदरती साधन जिससे शरीर को अनावश्यक कष्ट दे कर ईश्वर प्राप्ति की आशा की जाती है, जैसे अनाज, जल एवं दूसरे खाद्य पदार्थों का त्याग कर के भूख की यातना को सहन करना, वस्त्र न पहन कर शरीर को गर्मी, सर्दी आदि सहन करने के लिए मजबूर करना, अति शीत जल में चालीस दिन तक शरीर को अनावश्यक कष्ट देना एवं अपने आस-पास अग्नि जला कर लगातार शरीर को यातनाएं देना । **संजम** = संयम के नाम पर प्रयोग में लाये जाने वाले निरर्थक साधन, जिनका संयम के साथ कोई सम्बन्ध नहीं । **पूरन जोति** = प्रभु के ज्ञान का पूर्ण प्रकाश । **जगै** = प्रकाशित हो, चमक उठे । **घट मैं** = हृदय में । **नखालस** = पूर्णतया शुद्ध ।

भाव :—प्रस्तुत सवैये में श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने आदर्श इन्सान अथवा खालसा के लक्ष्णों का बड़ा सुन्दर निरूपण किया है । भ्रम तथा पाखण्ड रूपी मैल से रहित इन्सान ही सही अर्थों में खालसा कहलाने का अधिकारी है ।

गुरुदेव फुर्माते हैं, जो मनुष्य अपने मन को दिन रात उस परमेश्वर के ध्यान में लीन करते हैं, जो सारे विश्व में ज्योति रूप में विस्तृत है और जो पूर्ण जागृत रूप वाला अस्तित्व है और जो विश्व के एक मात्र स्वामी को छोड़ कर किसी भी कृत्रिम शक्ति को अपने मन में निवास नहीं देता, जो ऐसे परमेश्वर में पूर्ण आस्था और विश्वास रख कर उससे पक्का और अनन्य प्रेम सजाता (करता) है, जो कभी भूल कर भी निरर्थक व्रत नहीं धारण करता, कब्रों, मढ़ियों आदि की पूजा में संलग्न नहीं होता मठों आदि में अर्थहीन विश्वास नहीं रखता, जो तीर्थ-यात्रा या तीर्थ स्नान, दम्भपूर्ण दान, दिखलावे की दया, निरर्थक तपस्या और हट-पूर्ण संयम आदि में से एक भी साधन को अपनाने के लिए तैयार न हो और प्रभु के साथ सच्चा, निष्काम और निर्बाध प्रेम करने का एक मात्र साधन अपनाए, जिसके मन में प्रभु के पूर्ण एवं सत्य ज्ञान की ज्योति ही प्रज्वलित हो, वही मनुष्य वास्तव में शुद्ध इन्सान अथवा पूर्ण खालसा कहला सकता है।

सिद्धान्त-सार :—आदर्श इन्सान केवल मात्र भगवान से सच्चा और अनन्य प्रेम करता है। भगवान् पर उसका अटल विश्वास होता है। उसके हृदय में भगवान के सच्चे ज्ञान का पूर्ण प्रकाश होता है। फलस्वरूप वह भगवान को छोड़ कर किसी भी अन्य देवी-देवता में आस्था नहीं रखता और न ही धर्म के नाम पर प्रचलित किए गए निरर्थक साधनों अथवा खोखले सिद्धान्तों को किसी रूप में मानता है। वह निरर्थक व्रत धारण नहीं करता ; न ही कब्रों, मढ़ियों और मठों की पूजा करता है। वह तीर्थ यात्रा, तीर्थ-स्नान आदि के चक्कर में भी नहीं पड़ता क्योंकि उसके लिए सारा संसार ही पवित्र है और उसके लिए कर्म भूमि है। अहंकार को बढ़ावा देने वाले दम्भ-पूर्ण दान के साधन से अपना आत्मिक जीवन नष्ट नहीं करता, वरन् अपनी मेहनत की कमाई को ज़रुरतमन्दों में बांट कर खाने में विश्वास रखता है। वह दया के नाम पर अपनाए जा रहे हास्यास्पद साधनों और कर्मों को भी नहीं मानता और न ही शरीर को अनावश्यक प्रकार की तपस्याओं और कष्टों में डालने के साधन को मानता है। हठ-पूर्ण संयम के स्थान पर वह मन के विकारों और वासनाओं को सहज संयम द्वारा वश में करता है।

(2)

सत्य सदैव सरूप सत्यव्रत, आदि अनादि अगाधि अजै है॥
दान, दया दम संजम नेम, जत ब्रत सील सुब्रत अबै है॥

आदि अनील अनादि अनाहद, आप अद्वैख अभेख अभै है॥
रूप अरूप अरेख जरार्दन, दीन-दयाल कृपाल भए है॥

शब्दार्थ :—सत्य सदैव = सदा कायम रहने वाला। **सत्य व्रत** = सत्य के व्रत को धारण करने वाला। **अनादि** = जिसका आदि अथवा आरम्भ उपलब्ध नहीं, भगवान। **अगाधि** = जिसकी थाह न पाई जा सके, भगवान। **अजै-अजय** = जो जीता न जा सके, भगवान। **दम** = अपने आप पर काबू पाना। **जत व्रत** = जत के ब्रत को धारण करने वाला। **सुब्रत** = अच्छे उत्तम सिद्धान्तों वाला। **सील** = शील, अच्छा स्वभाव। **अबै** = सदा, नाश रहित। **अनील** = उज्जवल। **अद्वैख** = द्वेष रहित, ईर्ष्या रहित। **अभै** = अभय, भय रहित। **रूप अरूप** = जिसका रूप अरूप है। **अरेख** = रेखा आदि चिन्हों से रहित। **जरार्दन** = जिस पर बुढ़ापा प्रभाव न डाल सके, बुढ़ापे को जीत लेने वाला। **कृपाल** = कृपालु।

भाव :—इस सवैये में गुरुदेव ने परमेश्वर के गुणों का निरूपण किया है। परमेश्वर सदैव काल के लिए कायम रहने वाली शक्ति है। वह सत्य के व्रत को धारण करने वाला है अर्थात् उसके कानून एवं नियम अटल तथा सत्य है। वह सारे संसार का आदि अथवा आरम्भ है परन्तु उसका अपना कोई आदि अथवा आरम्भ उपलब्ध नहीं। वह स्वयं थाह-रहित और अजेय हस्ती है। उस प्रभु के दान, दया, स्वयं पर काबू पाने, अपने आपको एक विशेष मर्यादा के भीतर रखने के नियम, उसके जत (आचरण) के प्रण, नेकी, शील स्वभाव के नियम लगातार कायम रहने वाले हैं। वह सारे विश्व का आदि अथवा आरम्भ है, उज्जवल व्यक्तित्व वाला तथा स्वयं आदि-रहित है। वह सदा एक-रस कायम रहने वाली हस्ती है। वह ईर्ष्या-द्वेष से रहित, विभिन्न सम्प्रदायों की वेश-भूषा के भेदों से रहित और निर्भय चरित्र है। उसका अरूप होना ही वास्तव में उसका रूप है। वह रेखा आदि चिन्हों से रहित है और बुढ़ापे अथवा काल से कभी प्रभावित नहीं होता। वह दीनों पर दया करने वाला, कृपालु पिता है।

सार :—प्रभु के गुण-गणना रहित हैं। वह स्पष्टतः ऐसे गुणों का स्वामी है जो कृत्रिम अस्तित्वों, देवी-देवताओं और संसार में पैदा हुए किसी महानतम व्यक्ति में भी नहीं हो सकते। उसके गुण अद्वितीय है।

(3)

आदि अद्वैख अभेख महांप्रभु, सत्य सरूप सुजोति प्रकासी॥
पूर रहयो सब ही घट के पट, तत समाधि सुभाव प्रणासी॥

आदि जुगादि जुगादि तुही प्रभु, फैल रहयो सब अंतर बासी॥
दीन दयाल कृपाल कृपा कर आदि अजोनि अजय अविनासी॥

शब्दार्थ :—अद्वैख = ईर्ष्या-द्वेष से रहित। **अभेख** = वेश-भूषा से रहित। **सुजोति प्रकासी** = उत्तम ज्योति का प्रकाश देने वाला। **घट के पट** = हृदय के भीतर। **तत समाधि** = शुद्ध एवं अटल समाधि। **सुभाव प्रणासी** = स्वभाविक तौर पर ही नाश करने की शक्ति रखता है। **सब अंतर-बासी** = सब के हृदय में निवास रखने वाला। **अजय** = न जीता जा सकने वाला।

भाव :—गुरुदेव कथन करते हैं कि परमेश्वर सारे विश्व का आदि है। वह ईर्ष्या-द्वेष से रहित, वेश-भूषा के भेदों से रहित और सब से बड़ा स्वामी है। उसका अस्तित्व सदैव कायम रहने वाला है और सारे संसार को अपनी उत्तम ज्योति का प्रकाश देने वाला है। वह संसार के हर प्राणी के हृदय में विद्यमान है एवं शुद्ध तथा अटल समाधि स्वरूप है। वह स्वाभाविक तौर पर हर जीव और पदार्थ को नाश करने की शक्ति रखता है। वह सारे विश्व का आदि प्रारम्भ है ; युगों का भी आरम्भ वह स्वयं है। संसार के अस्तित्व का आदि भी वह खुद है। हे स्वामी, तू प्रत्येक हृदय में भरपूर है। हे दीनों पर दया करने वाले कृपालु प्रभु, हम पर भी तू अपनी कृपा कर तू, सब का आदि है, अयोनि है, अजय और अविनाशी अस्तित्व है।

सार :—प्रभु अद्वितीय गुणों का स्वामी है और उसकी बराबरी का कोई भी नहीं।

(4)

आदि, अभेख, अछेद सदा प्रभु, वेद कतेबन भेद न पायो॥
दीन-दयाल कृपाल कृपा-निधि, सत्य सदैव सबै घटि छायो॥
शेष, सुरेश, गणेश, महेशुर, गाहि फिरे, सरुति थाह न आयो॥
रे मन मूढ़, अगूढ़ ऐसो प्रभु, तैं किहि काजि कहो बिसरायो॥

शब्दार्थ :—अभेख = भेख या वेश-भूषा के भेदों से रहित। **अछेद** = जिसको छेदा न जा सके। **वेद** = चार वेद, ऋगवेद यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। **कतेबन** = चार पाश्चात्य धर्म ग्रन्थ, जंबूर, तौरेत, अंजील एवं कुरान। **भेद** = असलियत, वास्तविकता। **कृपा-निधि** = कृपा का खज़ाना। **शेष** = शेष नाग।

सुरेश = इन्द्र देवता। **महेशुर** = शिव। **गाहि फिरे** = गहराई को नापते फिरते रहे। **सरुति** = वेद। **अगूढ़** = प्रकट, स्पष्ट। **ऐसो प्रभु** = ऐसे प्रभु को।

भाव :—इस सवैये में गुरुदेव कलगीधर ने प्रभु के गुणों का उल्लेख करते हुए मनुष्य को उसके स्मरण करने की प्रेरणा दी है।

गुरुदेव फुरमाते है कि परमेश्वर सब का आदि है और वह किसी खास वेश-भूषा या पहरावे का धारणी नहीं है। उसका संसार की कोई भी शक्ति छेदना या हनन नहीं कर सकती और वह सदैव काल के लिए कायम रहने वाली हस्ती है। उसके सम्पूर्ण स्वरूप व गुणों की थाह तो चारों वेदों और चारों कतेबों में वर्णित ज्ञान से भी नहीं पाई जा सकती अर्थात् उस के गुण गणना से रहित और अनन्त है। वह गरीबों पर दया करने वाला और कृपालु प्रभु है। वह कृपा का कोष है और सदा कायम रहने वाली हस्ती है और वह अदृष्ट रूप से संसार के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय पर छाया हुआ है। शेषनाग, इन्द्र और शिवजी सभी उस परमेश्वर की थाह पाने का यत्न करते रहे पर प्रभु की थाह न पा सके—भला अथाह की थाह कोई कैसे पा सकता है।

हे मूर्ख मन, जो प्रभु प्रकट तौर पर इतना स्पष्ट और विशाल है, उसको तूने क्यों भुला दिया है।

सार : प्रभु अनन्त गुणों का सागर है और उसकी याद में जुड़ने की मानव मात्र को बहुत ज़रूरत है।

(5)

अच्युत् आदि अनील अनाहद, सत्य सरूप सदैव बखाने॥
आदि अजोनि अजाय जरा-बिनु, परम पुनीत परंपर माने॥
सिद्ध स्वयंभू प्रसिद्ध सबै जगि, एक ही ठौर अनेक बखाने॥
रे मन रंक, कलंक बिना हरि, तौव किह कारण ते न पछाने॥

शब्दार्थ :—**अच्युत** = अटल, अडिग। **अनील** = उज्जवल। **अनाहद** = एक रस, लगातार। **अजाय** = जन्म-रहित। **जरा बिनु** = बुढ़ापे से रहित। **परम पुनीत** = अत्यन्त पवित्र। **परंपर** = परे से परे। **सिद्ध** = सिद्धियों का मालिक। (सिद्धियां = कुछ विशेष अद्वितीय शक्तियां)। **स्वयंभू** = स्वयं प्रकाशित, अपने आप से पैदा हुआ। **रंक** = गरीब मूर्ख। **कलंक बिना** = पाप या दोष से रहित।

भाव :—इस सवैये में गुरुदेव प्रभु के गुणों का गायन करते हुए मनुष्य को उसके साथ सम्बन्ध जोड़ने अथवा उसको पहचानने की प्रेरणा देते हैं।

प्रभु अपनी अटल पदवी पर अडिग रूप में विद्यमान है और सारे विश्व का आदि है। वह उज्जवल और एक रस लगातार कायम रहने वाली हस्ती है। उसका स्वरूप ही सत्य है और सदैव काल तक कायम रहने वाला अस्तित्व करके ही उसकी व्याख्या की जाती है। वह विश्व का आदि है और जन्म-रहित अयोनि है, अजन्मा है तथा बुढ़ापे के प्रभाव में भी नहीं आता। वह धर्म वेत्ताओं में परम पवित्र और परे से परे अथवा अनन्त करके माना जाता है। वह सभी सिद्धियों और शक्तियों का मालिक है और इन सब शक्तियों का प्रकाश उसके अपने आप से हुआ है। ये सब अद्वितीय शक्तियां प्रभु के अपने आप से पैदा हुई हैं। उसका यह गुण सारे संसार में प्रसिद्ध अथवा विदित है। प्रभु है तो एक और केवल एक, परन्तु उसकी शक्ति का निवास या उसकी सुगन्धि अनेक स्थानों (प्रत्येक स्थान) पर बतलाई जाती है।

हे मूर्ख मन, हरि परमेश्वर तो सब प्रकार के पापों और दोषों से रहित है। तूं किस कारण उसको पहचान नहीं पा रहा तथा किस कारण उसके साथ प्रेम नहीं कर रहा।

सार :— प्रभु अनन्त गुणों का सागर है। मनुष्य को चाहिए कि उसको पहचाने और उसके साथ सच्चा प्रेम करे और यही मनुष्य जीवन का वास्तविक लक्ष्य है।

(6)

अछर आदि अनील अनाहद, सत्य सदैव तुही करतारा॥
जीव जिते जल मैं थल मैं, सब के सद पेट को पोखन हारा॥
वेद पुराण कुरान दुहूं मिलि, भांति अनेक विचार विचारा॥
और जहान निदान कछू नहि, ऐ सुबहान तुही सिरदारा॥

शब्दार्थ : अछर = नाश रहित, क्षय-रहित। **पोखनहारा** = पोषण करने वाला। **निदान** = अन्त में। **सुबहान** = महान् पवित्र। **सिरदारा** = सरदार, शिरोमणि।

भाव : हे प्रभु, तू नाश-रहित है, सबका आदि है, उज्जवल तथा एक रस लगातार कायम रहने वाला है। तू सदैव काल के लिए सत्य है और सारी सृष्टि

का रचियता है। जल तथा थल में अर्थात् सर्वत्र जो भी जीव या प्राणी हैं, तू उन सबको उनका भोजन देने वाला अथवा उनका पोषण करने वाला है। हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के धर्म-ग्रन्थ—वेद पुराण और कतेबें अनेकों ढंगों से परमेश्वर के गुणों का विचार करते हैं। इस संसार में कोई भी जीव अथवा पदार्थ अन्त तक (सदा के लिए) कायम नहीं रह सकता। हे परम पवित्र और सबके शिरोमणि सरदार, सदा के लिए कायम रहने वाली हस्ती केवल मात्र तू आप ही है।

सार—प्रभु अनन्त है तथा सबका पोषण करने वाला है।

(7)

आदि अगाधि अछेद अभेद, अलेख अजेय अनाहद जाना॥
भूत भविष भवान तुही, सबहूं सब ठौरन मो मन माना॥
देव अदेव महीधर नारद, शारद सत्य सदैव पछाना॥
दीन दयाल कृपानिधि को कछु, भेद पुराण कुरान न जाना॥

शब्दार्थ :—अगाधि = बहुत गहरा, जिसकी थाह न पाई जा सके। **अछेद** = जो छेदा न जा सके। **अभेद** = जो भेदा न जा सके, जो तोड़ा न जा सके। **अलेख** = जो लिखा न जा सके, जिसका पूर्ण विवरण लिखाई में न आ सके। **अजेय** = जो जीता न जा सके। **भविष** = भविष्य आने वाला समय। **भवान** = वर्त्तमान काल। **ठौरन** = स्थान। **मो** = बीच। **सबहूं** = सब ने। **मन माना**—मन में माना। **महीधर** = शेष नाग। **शारद** = शारदा, सरस्वती। **सत्य सदैव** = सदैव कायम रहने वाला। **भेद** = असलियत।

भाव :—गुरुदेव परमेश्वर के गुणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि प्रभु सबका आदि है ; वह अगाध अथवा अथाह है। उसको न छेदा जा सकता है ; न तोड़ा जा सकता है। उसके समस्त गुणों को लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता। वह अजेय शक्ति है और उसे सदा एक रस कायम रहने वाली हस्ती करके जाना जाता है। प्रभु का अस्तित्व भूतकाल, भविष्य काल तथा वर्त्तमान काल-तीनों में एक रस कायम रहने वाला है। सब तत्त्व वेत्ता लोग मन में ऐसा ही विश्वास करते हैं कि प्रभु सब स्थानों में अर्थात् सर्वस्व विद्यमान है। देव और अदेव, शेषनाग और नारद तथा सरस्वती सब प्रभु को सदैव कायम रहने वाली हस्ती मानते हैं। परमेश्वर के समस्त गुणों का पारावार पुराण तथा कुरान आदि धार्मिक

ग्रन्थ भी पूरी तरह नहीं लगा सकते। वह दीनों पर दया करने वाला और कृपा का भंडार है।

सार :—परमेश्वर के गुण अनन्त हैं। उसके समस्त गुणों का पारावार नहीं पाया जा सकता। (उपरोक्त सवैये में पुराण कुरान आदि धार्मिक ग्रन्थों को न्यून नहीं बताया गया, वरन् परमेश्वर की विशालता का वर्णन किया है जिसका पारावार नहीं है।)

(8)

सत्य सदैव स्वरूप सत्यव्रत, बेद कतेब तुहीं उपजायो॥
देव अदेवन देव महीधर, भूत भवान वही ठहरायो॥
आदि जुगादि अनील अनाहद, लोक अलोक विलोक न पायो॥
रे मन मूढ़ अगूढ़ ऐसो प्रभु, तोहि कहो किह आन सुनायो॥

शब्दार्थ :—**सत्यव्रत** = अटल कानूनों वाला। **देव अदेवन** = देवताओं और दैत्यो को। **महीधर** = शेषनाग। **वही** = वही प्रभु। **जुगादि** = युगों के जन्म से भी पहले मौजूद। **लोक** = संसार। **अलोक** = अदृष्ट, जो आंखों से देखा न जा सके। **किह** = किसने। **आन** = प्रभु को छोड़कर कोई अन्य। **सुनायो** = सुनाया, बताया। **अगूढ़** = प्रकट, स्पष्ट।

भाव :—इस सवैये में श्री गुरु गोविन्द सिंघ जी ने परमेश्वर के अनेकों गुणों का वर्णन करके उसके अद्वितीय होने की बात कही है। गुरुदेव कहते हैं, हे प्रभु, तू सदा कायम रहने वाले अटल कानूनों व नियमों का स्वामी है। वेद और कतेब जो तेरे गुणों का वर्णन करने के लिए हैं, तेरे अटल कानूनों और नियमों के अधीन ही पैदा हुए हैं। देवता तथा दैत्य, शेषनाग देवता आदि सब भूतकाल में या वर्तमान में सब तुझी द्वारा ठहराए गए हैं अर्थात् स्थापित किये गए हैं। तूं संसार का आदि है, युगों के जन्म से पहले भी तू ही था तथा तू उज्जवल एवं सदा एक रस कायम रहने वाली एक मात्र हस्ती है। परमेश्वर आंखों द्वारा न देखी जा सकने वाली अदृष्ट हस्ती है जिसको संसार आंखों मात्र से नहीं देख सकता। गुरुदेव फरमाते हैं, हे मूर्ख मन, अद्वितीय गुणों के मालिक ऐसे स्पष्ट तथा प्रकट प्रभु को छोड़ कर किसी अन्य को अपना इष्ट मानना फ़ज़ूल की बात है।

सार :—परमेश्वर एक मात्र अद्वितीय मालिक है और वह सही अर्थों में अद्वितीय है।

(9)

देव अदेव महीधर नागन, सिद्ध प्रसिद्ध बडो तप कीन्हो॥
वेद पुराण कुरान सबै, गुण गाई थके, पै जाय न चीन्हो॥
भूमि आकाश पतार दिसा विदिसा जिह सो सबकै चित्त चीन्हो॥
पूरे रही महि सो महिमा मन मैं तिह आनि मुझै कहि दीन्हो॥

शब्दार्थ :—**कीन्हो** = किया। **थके** = हार गए। **पै** = परन्तु। **चीन्हो** = पहचाना, जाना। **पतार** = पाताल। **दिसा बिदिसा** = दिशाएं और उप-दिशाएं। **जिह** = जो भी (जीव) हैं। **सबकै चित्त चीन्हो** = सब के मन की जानता है। **महि मो** = सारी धरती में। **आनि** = ला कर। **महिमा** = बड़प्पन। **मुझैं कहि दीन्हो** = मुझे कह देना, मुझे बताना।

भाव—गुरुदेव कहते हैं कि प्रभु को पाने के लिए देवते, दैत्य, शेषनाग, पातालवासी नाग और प्रसिद्ध सिद्ध अनेक बड़े-बड़े कष्टों को झेल कर तपस्या करते हैं। वेद, पुराण, कुरान आदि धर्म ग्रन्थ भी परमेश्वर के गुण गा गा कर हार गए परन्तु फिर भी प्रभु का सम्पूर्ण स्वरूप न पहचाना जा सका। (वेद कुरान आदि धर्म ग्रन्थों ने यथा योग्य तथा यथा सम्भव प्रभु के गुणों का उल्लेख किया है, परन्तु प्रभु के गुणों का तो कोई पारावार नहीं, इसलिए उसके सम्पूर्ण स्वरूप का कोई दावा नहीं कर सकता।) जो भी जीव पृथ्वी, आकाश तथा पाताल में चारों दिशाओं तथा चारों उप-दिशाओं में निवास करते हैं, उन सभी के मन की भीतर की अवस्था को प्रभु समझने व पहचानने वाला है। प्रभु का बड़प्पन या यश तो सारी पृथ्वी में फैला हुआ है। हे सतिसंगियों, मेरे मत में उसी प्रभु को लाकर मुझे उसकी बातें बतलाओ।

सार :—कुदरत में पैदा हुआ हर जीव एक मात्र प्रभु की हस्ती को ही प्रकट करता है और उसका यश सारे विश्व में फैला हुआ है।

(10)

वेद कतेब न भेद लह्यो, तिह सिद्ध समाधि सबै करि हारे॥
स्मृति, शासत्र, वेद सबै, बहु भांति पुराण विचार विचारे॥

आदि अनादि अगाधि कथा, ध्रुव से प्रहलाद अजामिल तारे ॥
नाम उचारि तरी गणिका, सोई नाम आधार विचार हमारे ॥

शब्दार्थ—शासत्र = शास्त्र। **लह्यो** = प्राप्त किया है। **सोई** = ओही। **भेद** = असलीयत। **समाधि** = समाधियां।

भाव—इस सवैये में गुरुदेव फरमाते हैं कि प्रभु की अनन्तता का भेद कोई भी नहीं पा सका है और ऐसे अनन्त प्रभु के साथ अनन्य, सच्चा तथा उत्कट प्रेम करना ही हमारे मन का मूल सिद्धान्त है। वेद और कतेब उस अनन्त प्रभु का पारावार नहीं पा सके। समाधि लगा कर बड़े-बड़े सिद्ध भी हार गए और प्रभु की थाह वे भी न ले सके। अनेकों ढंगों और विधियों द्वारा अनेकों स्मृतियों, शास्त्रों, वेदों और पुराणों ने भी प्रभु के बारे में अनेक प्रकार के विचारों या सिद्धान्तों का विचार किया। परमेश्वर सभी का आदि है परन्तु उसका अपना आदि या प्रारम्भ उपलब्ध नहीं। वह अगाध तथा अथाह है और इस तरह उसका गुणगान या उसकी कथा भी अगाध और अथाह है। उसने ध्रुव, प्रहलाद और अजामिल जैसे अनेकों व्यक्तियों को उनकी प्रेमाभक्ति के आधार पर संसार-सागर से पार किया है। उस प्रभु के साथ सच्चा प्रेम करके उसकी याद में उसका नाम-स्मरण करके गणिका जैसे पाप-कर्मों से युक्त स्त्री का भी पापों से छुटकारा हो गया और वह भी संसार-समुद्र से पार हो गई। प्रभु के साथ सच्चा प्यार करना और उसके अस्तित्व में जुड़ना ही हमारे मत की विचारधारा का आधार अथवा मूल-सिद्धान्त है।

सार—परमेश्वर अनन्त है और उसके साथ सच्चा प्रेम करना और उसका नाम सिमरण करना ही हमारे जीवन का मुख्य ध्येय होना चाहिए।

(11)

आदि अनादि अगाधि सदा प्रभु, सिद्ध स्वरूप सबौ पहचानयौ ॥
गंधर्व, जच्छ, महीधर, नागन, भूमि आकाश चहुं चक्क जानयों ॥
लोक अलोक दिसा बिदिसा, अरु देव अदेव दुहूं प्रभु मानयो ॥
चित्त अज्ञान सुजान स्वयंभव कौन की कानि निदान भुलानयो ॥

शब्दार्थ—आदि = आरम्भ। **अनादि** = जिसका कोई आदि उपलब्ध नहीं। **अगाधि** = जिसकी कोई थाह न हो। **सिद्ध स्वरूप** = सफल मनुष्य, ज्ञानवान पुरुष। **गंधर्व** = देवताओं के गायक। **जच्छ** = यक्ष, देवताओं की एक किस्म,

जिनका आधा शरीर घोड़े का और आधा मनुष्य जैसा होता है (ये कुबेर के उद्यानों को पानी लगाते तथा नृत्य करते हैं)। **चित्त अज्ञान** = अज्ञानी चित, मूर्ख मन। **सुजान** = ज्ञानवान प्रभु। **स्वयंभव** = स्वतः प्रकाशित। **कानि** = डर, मोहताजी। **लोक अलोक** = यह लोक और अन्य लोक।

भाव—इस सवैये में प्रभु का यशोगान करके मनुष्य को उसकी याद में लीन होने की प्रेरणा दी गई है।

गुरुदेव फरमाते हैं कि संसार के सब ज्ञानवान पुरुषों अथवा सफल मनुष्यों ने परमेश्वर को सबका आदि कर के पहचाना है और यह भी जाना है कि उसका अपना कोई आदि या प्रारम्भ नहीं और वह थाह-रहित है। वह सदा कायम रहने वाला सारे संसार का स्वामी है। वह प्रभु गन्धर्वों, यक्षों, शेषनाग, पातालावासी नागों में, भूमि, आकाश मंडल आदि की चारों दिशाओं में निवास करने वाले सब जीवों में जाना जाता है। इस पृथ्वी पर रहने वाले और अन्य लोकों में निवास करने वाले, चारों दिशाओं और चारों उप-दिशाओं में निवास करने वाले देवते तथा दैत्य सभी परमेश्वर को अपना प्रभु कर के मानते हैं। हे अज्ञानी मन वाले मनुष्य, तू आखिर किसके डर के कारण ज्ञानवान एवं स्वतः प्रकाशित प्रभु को भुलाएं बैठा है।

सार—प्रभु महान् शक्तियों का स्रोत है। मनुष्य अज्ञान-वश उससे मुख फेर रहा है।

(12)

काहूं लै ठोक बंधे उर ठाकुर, काहूं महेश को एस बखानियो ॥
काहू कह्यो हरि मंदिर मैं, हरि काहूं मसीत के बीच प्रमानियो ॥
काहूं ने राम कहयो, कृष्णा काहूं, काहूं मनहि अवतारन मानियो ॥
फोकट धरम बिसार सबै, करतार ही कौ कर्त्ता जिय जानियो ॥

शब्दार्थ—**उर** = छाती पर, गले में। **ठाकुर** = विष्णु का शालिग्राम पत्थर। **महेश** = शिव। **एस** = ईश्वर भगवान। **बखानियो** = बखान किया है, वर्णन किया है। **प्रमानियो** = प्रमाणित किया है, साबित किया है। **मनहि** = मन में। **अवतारन** = अवतारों को। **फोकट** = खोखले, निरर्थक।

भाव—इस सवैये में कलगीधर स्वामी निरर्थक और निरर्थक विश्वासों व सिद्धान्तों का खंडन करके मनुष्य को एक मात्र सृजनहार भगवान् से प्रेम करने की प्रेरणा देते हैं। गुरुदेव कथन करते हैं कि कोई जिज्ञासु ईश्वर के साथ सच्चा प्रेम करने के स्थान पर अपनी छाती पर विष्णु का शालिग्राम लटकाए घूम रहा है और कोई शिव जी को ही संसार का स्वामी, सृजनहार और पोषण करने वाला करके वर्णन कर रहे है। कोई कह रहा है कि भगवान मंदिर में निवास करता है तो किसी को यह सूझी है कि वह उसे मस्जिद में ही प्रमाणित कर रहा है। कोई दशरथ सुत श्रीराम को भगवान मान रहा है तो कोई श्री कृष्ण को परमेश्वर मानता है और कोई विष्णु के अवतार कहे जाने वाले व्यक्तित्वों को अपने मन में भगवान मान रहा है। गुरुदेव कथन करते हैं कि हे मनुष्य, इन निरर्थक एवं आधारहीन विश्वासों तथा धर्म-सिद्धान्तों को भूल जा और अपने हृदय में यह तथ्य अच्छी तरह समझ ले कि केवल मात्र करतार ही सृष्टि का सृजनहारा है।

सार—निरर्थक धार्मिक विश्वास और धार्मिक सिद्धान्त त्याज्य है। श्री राम, श्री कृष्ण, विष्णु, शिव आदि व्यक्ति और जो कुछ भी हों, परमेश्वर नहीं। परमेश्वर आदि, अजन्मा एवं सदैव सत्य है। भगवान् केवल मंदिर या मस्जिद में नहीं, सर्वत्र निवास करते हैं।

(13)

जौं कहौ राम अजोनि अजै, अति काहे कौ कौशल कुख जयो जू॥
कालहू कान्ह कहै जिह को, किह कारण काल ते दीन भयो जू॥
संत स्वरूप बिबैर कहाय, सु क्यों पत्थर कौ रथ हांक धयों जू॥
ताही कौ मान प्रभू करकै, जिहको कोई भेद न ले न लयो जू॥

शब्दार्थ—**अजोनि** = अयोनि (84 लाख), योनियों में न पड़ने वाला। **अजै** = अजन्मा। **कौशल** = कौशल्या माता। **कुख** = गर्भाशय, पेट। **जयो** = जन्म लिया। **कालहू** = काल या समय पर प्रभाव रखने वाला। **कान्ह** = श्री कृष्ण। **जिह को** = जिस प्रभु को। **किह कारण** = किस कारण वश। **काल ते** = समय की मार से। **दीन** = लाचार। **बिबैर** = वैर-रहित। **पत्थर** = अर्जुन पाण्डव। **हांक धयो** = हांकना पड़ा। **न ले** = न ले सकेगा। **न लयो** = न लिया।

भाव—इस सवैये में कलगीधर स्वामी हमें अवतार-पूजा के विरुद्ध दृढ़ता सहित बड़ी सार्थक शिक्षा देते हैं। स्पष्ट शब्दों में परमेश्वर को अयोनि, अजन्मा और अकाल बतलाते हुए बड़े निर्भीक होकर इस तथ्य को घोषित करते है कि श्री राम और श्री कृष्ण और जो कुछ भी हों, उन्हें परमेश्वर घोषित करना अनुचित है। (उन्हें किसी काल विशेष में पैदा हुए महान् पुरुषों में ही गिना जाना चाहिए, ईश्वर नहीं।)

अवतार-पूजा करने वालों और ईश्वर-रचना किसी मानव विशेष को ईश्वर मानने वालों को गुरुदेव कहते हैं कि एक ओर तो आप परमेश्वर को अयोनि और अजन्मा मानते हैं अर्थात् यह मानते हैं कि परमेश्वर जन्म-मरण में आने वाली और (चौरासी लाख) योनियों में भ्रमण करने वाली हस्ती नहीं, तो दूसरी ओर कौशल्या-सुत श्री रामचन्द्र को ईश्वर मान रहे हो, जो माता कौशल्या की कोख से उत्पन्न हुए। यदि श्री रामचन्द्र ईश्वर हैं तो उन्होंने कौशल्य के गर्भ से जन्म क्यों लिया। उसी प्रकार परमेश्वर तो काल या समय के प्रभाव में नहीं आता और यदि श्री कृष्ण को काल-रहित परमेश्वर मानते हैं तो यह कैसे सम्भव हो सकता है। फिर परमेश्वर कहलाने वाले श्री कृष्ण काल-चक्र के सामने क्यों अड़ न सके और अपने अन्तिम समय में बड़ी लाचारी वाली दशा में कैसे पहुंच गए, जबकि वे एक वधिक के बाण से छेदन हो गए। परमेश्वर के बारे में यह निर्विवाद है कि वह सन्त-रूप और द्वेष-ईर्ष्या आदि भावनाओं से रहित हैं, पर आपकी कथाएं श्री कृष्ण को इस प्रकार तो नहीं बतलातीं। श्री कृष्ण ने स्पष्टतः महाभारत के युद्ध में कौरवों के विरुद्ध पाण्डवों की सहायता की और इस प्रक्रिया में उन्होनें अर्जुन का रथ भी हांका। श्री कृष्ण स्पष्टतः पक्षपात के रास्ते पर चले। (यदि कौरव धर्मविरोधी आचरण वाले पापी और दुराचारी थे, तो पाण्डव भी कुछ कम न थे अन्यथा जुआ खेलना और उसमें अपनी एक मात्र पत्नी द्रोपदी को दांव में लगा देना भले मानसों का कार्य नहीं कहा जा सकता।) गुरुदेव फरमाते हैं कि श्री रामचन्द्र तथा श्री कृष्ण परमेश्वर नहीं है और न ही परमेश्वर रूप में उनकी पूजा प्रतिष्ठा योग्य और न्यायसंगत है। हे संसार के प्राणियों, आप केवल उस एक मात्र शक्ति प्रभु परमेश्वर को ही अपना इष्ट मानो, जिसका पारावार न कोई ले सका है और न कभी ले ही सकेगा।

सार—गुरुदेव का मत जन्म-मरण में पड़े किसी व्यक्ति को भी परमेश्वर मानने

के लिए तैयार नहीं। श्री राम तथा श्री कृष्ण और चाहे कुछ भी हों, परन्तु परमेश्वर नहीं हो सकते। श्री राम और श्री कृष्ण बाकी मनुष्यों की तरह काल से प्रभावित होते रहे। कलगीधर स्वामी के स्पष्ट हुक्मों और आदेशों के बावजूद यदि सिख जगत ऐसे व्यक्तियों को ईश्वर के अवतार मानता जाये तो यह बात गुरुदेव का अपमान करने के तुल्य है।

(14)

क्यों कहो कृष्ण कृपानिधि है, किह काज ते बधिक वाण लगायो॥
और कुलीन उधारत जौ, किह ते अपनो कुल नास करायो॥
आदि अजोनि कहाय कहो, किम देवकि के जठरंतर आयो॥
तात न मात कहै जिह को तिह क्यों वसुदेवहिं बाप कहायो॥

शब्दार्थ—**कृपानिधि** = कृपा का भण्डार, ईश्वर। **किह काज ते** = किस कारण। **बधिक** = शिकारी। **और कुलीन** = और लोगों के कुल या खानदान। **देवकि के** = देवकी माता के। **किम** = किस तरह, कैसे। **जठरंतर** = पेट में, कोख में। **तात** = पिता। **जिह को** = जिस ईश्वर का। **वसुदेवहिं** = वसुदेव को।

भाव—प्रस्तुत सवैये में गुरुदेव हमें स्पष्ट शब्दों में समझाते हैं कि श्री कृष्ण को ईश्वर मानना गैर-वाजिब बात है। यह भी समझ लेना चाहिए कि इस सवैये में श्री कृष्ण की कोई विरोधता नहीं। बात तो केवल यह स्पष्ट की गई है कि जो गुण परमेश्वर में निरूपण किये जाते हैं, वे श्री कृष्ण में सिद्धांतिक तौर पर हो ही नहीं सकते।

गुरुदेव फरमाते हैं कि श्री कृष्ण को आप कृपा का भण्डार परमेश्वर कैसे मान सकते हो। यदि श्री कृष्ण सर्व-शक्तिमान या सामर्थ्य से परिपूर्ण थे (जो भगवान के मूल गुण है) तो वे एक शिकारी के वाण से क्यों हताहत हो गए। यदि वे और लोगों के खानदानों या वंशों का पार-उतारा करने की शक्ति रखते थे तो यह कैसे माना जा सकता है ? उन्होंने अपने खानदान का समूल नाश क्यों करवा लिया। भगवान तो आदि और अयोनि हैं। यदि श्री कृष्ण को आदि और अयोनि माना जाये तो कैसे। उन्होंने स्पष्टता माता देवकी की कोख से जन्म लिया। भगवान के बारे में सम्पूर्ण विश्व में विख्यात है कि उसका कोई पिता नहीं, उसकी कोई

माता नहीं। यदि कृष्ण जी को भगवान माना जाये तो कैसे ? उन्होंने वासुदेव जी को अपना पिता कैसे कहलवा लिया अर्थात् किसी भांति भी यह नहीं माना जा सकता कि श्री कृष्ण परमेश्वर थे।

सार—गुरुदेव का मत जन्म एवं मृत्यु की प्रक्रिया को प्राप्त होने वाले किसी व्यक्ति को परमेश्वर नहीं मानती। श्री कृष्ण और जो चाहे मान लिए जाएं, भगवान करके नहीं माने जा सकते। श्री कृष्ण भी और मनुष्यों की तरह काल से प्रभावित होते रहे। इस कारण उन्हें ईश्वर या ईश्वर का अवतार कहना ईश्वर का अनादर है।

(15)

काहे को ईश महेशहिं भाखत, काहे दिजेश को ईश बखानयो॥
है न रघ्वेश, जद्वैश रमापति, तैं जिनको विश्वनाथ पछानयो॥
एक को छाड अनेक भजै, शुकदेव पराशर, व्यास झुठानयो॥
फोकट धर्म सजै सबही, हम एक ही को बिधिनेक प्रमानयो॥

शब्दार्थ—ईश = प्रभु। **महेशहिं** = शिवजी को। **भाखत** = कहते हो। **दिजेश** = द्विजेश, ब्राह्मा, ब्राह्मणों का ईश। **बखानयो** = वर्णन करते हो। **रघ्वेश** = श्री राम चन्द्र। **जद्वैश** = यादवों का ईश, श्री कृष्ण। **रमापति** = विष्णु जी। **तैं** = तूने। **बिश्वनाथ** = सृष्टि का मालिक, ईश्वर। **शुकदेव** = राजा परीक्षत को श्रीमद् भागवत् सुनाने वाला एक ऋषि। **पराशर** = एक ऋषि जो व्यास जी के पुत्र थे और जिन्होंने ऋग्वेद के कई मन्त्र रचे थे। **व्यास** = एक ऋषि जो सुप्रसिद्ध महाभारत के रचियता थे। **झुठानयो** = झूठा बनाते हो, उनके विचारों को गलत साबित करने का यत्न करते हो। **फोकट धर्म** = आधारहीन मत-मतांतर। **सजै** = सृजते हैं, को मानते हैं। **एक ही को** = एक मात्र ईश्वर को। **विधिनेक** = अनेक विधियों द्वारा, अनेक प्रकार से। **प्रमानयो** = प्रमाणित किया है, सिद्ध किया है।

भाव—उपरोक्त सवैये में गुरु गोबिन्द सिंघ जी एक मात्र परमेश्वर की आराधना का उपदेश दृढ़ कराके कृत्रिम व्यकतित्वों तथा कृत्रिम पदार्थों की पूजा से हमें वर्जित करते हैं।

गुरुदेव फुरमाते हैं कि हे संसार के लोगों, आप शिव जी को कैसे ईश्वर बतला रहे हो और किस आधार पर ब्रह्मा जी को ईश्वर कह के वर्णन कर रहे

हो। रघुपति श्री राम चन्द्र, यदुपति श्री कृष्ण, रमापति श्री विष्णु भी कदाचित ईश्वर नहीं, जिन्हें आप संसार या सृष्टि का स्वामी करके जान रहे हो। आप निर्रथक तौर पर एक परमेश्वर को छोड़ कर जन्म-मृत्यु की परिधि में बन्धे अनेकों व्यक्तित्वों की अराधना फज़ूल ही कर रहे हो और इस प्रकार करके शुक्रदेव, पराशर और व्यास जी जैसे विद्वान ऋषियों को झुठलाने का निरर्थक यत्न कर रहे हो, जिन्होंने पुकार पुकार कर केवल मात्र एक परमेश्वर की आराधना पर ज़ोर दिया है। संसार के अधिकतर लोग निरर्थक मतों का ऋंगार बनना चाहते हैं। गुरुदेव फुरमाते हैं कि हमने एक प्रभु को ही अनेक-अनेक ढंगों से प्रमाणित किया और माना है।

सार—शिव जी, ब्रह्मा जी, विष्णु जी, श्री कृष्ण, श्री राम आदि और जो कुछ भी हों, ईश्वर नहीं हो सकते। संसार के अधिकतर लोग निर्रथक सिद्धांतों में उलझ कर एक परमेश्वर का परित्याग कर रहे हैं।

(16)

कोऊ दिजेश को मानत है पशु, कोऊ महेश को ईश बतै है॥
कोऊ कहै विष्णु विशनायक, जाहि भजै अघ ओघ कटै है॥
बार हज़ार विचार अरे जड़, अन्त समय सब ही तज जै है॥
ताही को ध्यान प्रमान हिये, जोऊ था, अब है अरु आगे उहै है॥

शब्दार्थ— **दिजेश** = द्विजेश, ब्रह्मा जी। **महेश** = शिव जी। **विशनायक** = विश्व नायक, संसार का मालिक। **जाहि** = जिसको। **अघ** = दीर्घ पाप। **ओघ** = ढेर। **तज** = छोड़। **प्रमान** = दृढ़ता के साथ मान। **हिये** = हृदय में। **है है** = होगा।

भाव—गुरुदेव हमारा मार्ग दर्शन करने के लिए प्रभु के मूल लक्ष्णों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं और साथ ही यह भी अंकित करते हैं कि आम लोग किस चीज़ को परमेश्वर कर के मान रहे हैं। कोई पशु सदृश निर्बुद्धि हो कर केवल मात्र ब्रह्मा जी को ही परमेश्वर मान रहा है और कोई शिव जी को प्रभु बतला रहा है। कोई विष्णु जी में विश्व में स्वामी होने की बात कह रहा है और कहता फिरता है कि उसका भजन करने से हमारे ढेरों के ढेर पाप कट जाते हैं। गुरुदेव फुरमाते हैं कि हे मूर्ख इन्सान, तू ध्यानपूर्वक बार-बार विचार करके सही नतीजे पर पहुंच। असलियत यह है कि अन्त में इन पूर्वोक्त देवताओं में से कोई भी तेरा साथ नहीं निभा सकता। यदि तू अपना भला चाहता है तो अपने हृदय

में उस परमेश्वर का ध्यान दृढ़ कर जिसका धनात्मक अस्तित्व भूतकाल में भी था, वर्तमान काल में भी है और आने वाले समस्त भविष्य में भी कायम रहेगा।

सार—ब्रह्मा, शिव और विष्णु परमेश्वर नहीं और न ही इनका भजन या भक्ति मनुष्य की सच्ची सहायक हो सकती है। परमेश्वर भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनों कालों में सत्य रूप में एक रस कायम रहने वाला अस्तित्व है।

(17)

कोटिक इन्द्र करे जिह के, कई कोट इन्द्र उपिन्द्र बनाय खपायो॥
दानव देव फनिन्द्र धराधर, पच्छ पशू नहिं जात गनायो॥
आज लगे तप साधत है, शिवहू ब्रह्मा कछू पार न पायो॥
बेद कतेब न भेद लख्यो, जिंह सोउ गुर गुर मोहि बतायो॥

शब्दार्थ—कोटिक = करोड़ों। **जिह के** = जिसके। **करे** = पैदा किये। **उपिन्द्र** = इन्द्र का छोटा भाई, वामन अवतार। **खपायो** = समाप्त किये। **फनिन्द** = नाग। **धराधर** = शेषनाग। **पच्छ** = पक्षी। **आज लगे** = आज लग, अभी तक। **लख्यो** = समझा देखा। **जिहं सोऊ गुरु** = जिस महान् प्रभु को। **गुर** = गुरु ने। **मोहि** = मुझे। **बतायो** = बतलाया है।

भाव—प्रस्तुत सवैये में गुरुदेव परमेश्वर की अनन्नता का दिग्दर्शन करवाते हुए परमेश्वर की तुलना में कृत्रिम देवताओं की न्यूनता एवं छुद्रता को इंगित करते हैं।

परमात्मा के पैदा किये हुए करोड़ों इन्द्र देवते हैं और करोड़ों ही वामन अवतार हैं। ये सब देवते प्रभु ने कभी पैदा किये तो कभी इनका अन्त कर दिया। प्रभु ने इतने दैत्य, देवते, नाग, शेषनाग, पक्षी और पशु पैदा किये हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती। शिव जी व ब्रह्मा जी जैसे महान् देवतागण आज तक अपनी तपस्याएं साध रहे हैं, परन्तु फिर भी वे प्रभु का पारावार नहीं ले सके। जिस प्रभु के सम्पूर्ण रूप, अपार शक्ति और अद्वितीय व्यक्तित्व का सम्पूर्ण ज्ञान वेद कतेब आदि धार्मिक ग्रन्थ भी नहीं लिख सके, मेरे गुरु ने उसी महान् प्रभु के बारे में मुझे बतलाया और उसे ही चित में बसाने को कहा।

सार—देवी देवताओं के सामने हमारे खाहमखाह पीसने छूटे रहें, यह योग्य बात नहीं है और न ही किसी प्रकार हमें इनको ईश्वर तुल्य मानना चाहिए।

ध्यान लगाय ठगियो सब लोगन, सीस जटां नख हाथ बढ़ाए॥
लाय विभूति फिरियो मुख ऊपर, देव अदेव सबै डहकाए॥
लोभ के लागे फिरियो घर ही घर, जोग के न्यास सभौ विसराए॥
लाज गई कछु काज सरयो नहिं प्रेम बिना प्रभु पान न आए॥

शब्दार्थ—नख = नाखून। **बढ़ाए** = बढ़ाए। **विभूति** = स्वाहा: राख। **डहकाए** = भटकाए। **लोभ के लागे** = लोभ में लगै। **न्यास** = साधन, क्रियाएं, नियम। **काज सरयो नहिं** = काम नहीं बना। **पान** = पाणि, हाथ।

भाव—इस सवैये में गुरुदेव ने योग मत के पाखंडों का निरावरण करते हुए स्पष्ट किया है कि प्रभु योग मत की फोक्ट साधनाओं द्वारा नहीं, वरन् उसके साथ सच्चे प्रेम से प्राप्त होता है। गुरुदेव फुरमाते हैं कि हे योगी, इसमें कोई शंका नहीं कि तूं लोगों को अपनी समाधि का पाखंड रचा कर ठग रहा है, अपने सिर पर जटाएं बढ़ा कर और हाथों के नाखून बढ़ा कर लोगों को इन प्रपंचों द्वारा प्रभावित करता है। अपने मुख तथा शरीर पर राख लगा कर घूमता हुआ यहां के देवों और दैत्यों दोनों को भटका रहा है। वे भुलेखा खा कर समझने लगे हैं कि तूं कोई विशेष पहुंची हुई चीज़ है। वास्तविकता यह है कि तूं तो लोभ में लगा हुआ घर-घर भटक रहा है और यहां तक कि तूं उन सिद्धान्तों और असूलों को भी भूल चुका है जो तेरी धर्म पुस्तकों में योग मत के नियमों के तौर पर अंकित किये गये हैं। अपनी ऐसी करतूतों के कारण तूने अपनी इज्ज़त भी गंवा ली और अपना अभीष्ठ निशाना भी प्राप्त करने में असफल रहा, हे योगी, अपने में यह बात अच्छी तरह से दृढ़ कर ले कि सच्चे तथा अनन्य प्रेम के बिना प्रभु हाथ नहीं लग सकता, क्योंकि प्रभु प्राप्ति का सही सुगम मार्ग उसके साथ सच्चा प्रेम करना या प्रेमाभक्ति ही है।

सार—तपस्याओं का पाखण्ड करने वाला साधु पाखण्डी ही समझा जाना चाहिए और ऐसे कर्म में लीन साधु को सिखों द्वारा सम्मानित करना गुरुदेव के मत के विरुद्ध बात है। सिख मत में ईश्वर को प्राप्त करने का एक मात्र सफल साधन है कि पाखण्ड कर्मों और आडम्बरों को त्याग कर उसके साथ सच्चा प्रेम किया जाये।

(19)

काहे को डिम्भ करै मन मूरख, डिम्भ करै अपनो पत्त ख्वै है ॥
काहे को लोग ठगे ठगि लोगन, लोक गयो परलोक ग्वै है ॥
दीन दयाल की ठौर जहाँ, तिह ठौर बिखै तुहि ठौर न ऐहै ॥
चेत रे चेत अचेत महां जड़, भेष के कीने अलेख न पै है ॥

शब्दार्थ—डिम्भ = पाखण्ड। **पत्त** = इज्ज़त। **ख्वै है** = गंवाता है, क्षय करता है। **ठगि लोगन** = लोगों को ठग कर। **ग्वै है** = गंवाता हैं। **ठौर** = स्थान। **ऐहै** = होगी, मिलेगी। **जड़** = मूर्ख। **पै है** = पाएगा। **अलेख** = जिसके गुणों व शक्ति का पूर्ण वर्णन लिखा न जा सके।

भाव—इस सवैये में गुरुदेव ने पाखण्डों और बाहरी वेश-भूषाओं द्वारा विशेषता हासिल करने का विरोध किया है। गुरुदेव फुरमाते हैं कि ऐ मूर्ख पाखण्डियों, पाखण्ड कर करके क्यों महात्मा बनने का प्रदर्शन करते हो। बल्कि इन डिम्भों पाखण्डों द्वारा तो अपनी इज्ज़त ही गंवा रहे हो। तुमने संसार के लोगों को ठगने की कसम क्यों खा रखी है। निश्चय कर के समझा लो कि संसार को ठगने से न इस लोक में और न परलोक में कोई ऊंची आत्मिक पदवी प्राप्त होगी। दीनों पर दया करने वाला प्रभु जहां निवास करता है, उस सुन्दर मण्डल में तुम्हें अपने इन दुष्कर्मों के कारण कोई इज्ज़त वाला स्थान न प्राप्त हो सकेगा। ऐ मूर्ख, पाखण्डी और भेखी पुरुष, इन भेषों और पाखण्डों के बल से-तू महान् अलेख प्रभु को कभी प्राप्त नहीं कर सकेगा।

सार—गुरुमति भेष और पाखण्ड का सख़्त खण्डन करती है। यह भेख-धारी मत न होकर करनी-प्रधान मत है। भेषों की आधारशिला पर फला फूला सन्त-डम भी सिख मत में सम्मान का अधिकारी नहीं बन सकता।

(20)

काहे को पूजत पाहन कउ, कछु पाहन में परमेश्वर नाहीं ॥
ताहीं को पूज प्रभु करकै, जिहं पूजत ही अघ ओघ मिटाहीं ॥
आधि व्याधि के बन्धन जेतक, नाम के लेत सबै छुट जाहीं ॥
ताही को ध्यान प्रमान सदा, यह फोकट धरम करे फल नाहीं ॥

शब्दार्थ—पाहन = पत्थर, मूर्तियां। **ताहीं को** = उसी प्रभु को। **अघ** = पाप। **ओघ** = ढेर। **मिटाहीं** = मिटा देता है। **आधि** = मानसिक रोग। **व्याधि** = शारीरिक रोग। **जेतक** = जितने। **प्रमान** = दृढ़ता के साथ मान ले। **फोकट** = निरर्थक।

भाव—इस सवैये में कलगीधर पिता प्रभु प्राप्ति के लिये अपनाए जा रहे फोकट साधन मूर्ति-पूजा का खण्डन करते हैं और सदैव कायम रहने वाले एक मात्र परमेश्वर के नाम-स्मरण के साधन को अपनाने पर बल देते हैं। गुरुदेव फुरमाते हैं कि हे प्राणी, तू मूर्ति पूजा किस कारण करता है। इन पत्थरों में परमेश्वर तो है नहीं। तू उस प्रभु को मान और उस प्रभु की पूजा कर जिसको मानने और जिसकी पूजा करने से हर प्रकार के दुख, कष्ट और पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रभु का नाम स्मरण करना और उसके अस्तित्व में अटल विश्वास ऐसी अद्वितीय चीज़ें हैं जिनके द्वारा सब प्रकार के मानसिक और शारीरिक दुखों-कष्टों से छुटकारा मिल जाता है। हे इन्सान, ऐसे सर्व सामर्थ्य परमेश्वर में आस्था रख और उसी में अपना ध्यान लगा। पत्थर को भगवान् करके मानने से और पत्थर पूजा का निर्रथक उपदेश वाले फोक्ट धर्म को धारण करने से कोई आत्मिक फल प्राप्त नहीं हो सकता।

सार—गुरुदेव का मत मूर्ति-पूजा के पूर्णतया विरुद्ध है। इसी आधार पर तस्वीर पूजा भी गुरु मत विरुद्ध नियम है। तस्वीर पूजा करवाने वाले या गुरुदेवों की तस्वीरों का ध्यान लगाने का प्रचार करने वाले सन्त-साधु गुरुमति के प्रचारक नहीं माने जा सकते। वे गुरु मत विरोधी हैं और उनके साथ उसी रूप में व्यवहार होना चाहिए।

(21)

फोकट धर्म भयो फलहीन, जो पूज शिला जुग कोट गंवाई॥
सिद्धि कहां सिल के परसे, बल वृद्धि घटी नव निधि न पाई॥
आजही आज समय जो बितियो, नह काज सरयो कछु लाज न आई॥
श्री भगवंत भजियो न अरे जड़, ऐसे ही ऐसे सु वैस गंवाई॥

शब्दार्थ—शिला = पत्थर, मूर्तियां। **कोट** = करोड़ों। **जुग कोट** = करोड़ों युग लम्बी उम्र। **सिद्धि** = सफलता। **परसे** = स्पर्श करने से, पूजा करने से। **बल वृद्धि** = बल का बढ़ना। **नव निधि** = नौ निधियां, अपना अभीष्ट निशाना।

आज ही आज = आज आज करते हुए। **समय जो बितियो** = उम्र बीत गई है। **सरयो** = सफल हुआ। **ऐसे ही ऐसे** = अर्थहीन रूप में, मुफ्त में, बेकार में। **वैस** = उम्र।

भाव—इस सवैये में गुरुदेव ने निरथक प्रकार के धार्मिक सिद्धान्तों, खास तौर पर मूर्ति-पूजा आदि का ज़ोरदार विरोध किया है। मूर्ति-पूजा आदि अमंगलकारी कर्म-काण्डों को त्याग कर सर्व-सुन्दर परमेश्वर के साथ सच्चा प्रेम करने की प्रेरणा गुरुदेव ने की है। गुरु जी फुरमाते हैं कि निरथक मत-मतांतरों के फोक्ट एवं अर्थ हीन सिद्धांत और उनके अनुसार आचरण करना फलहीन है। इस ढंग से कोई आत्मिक फल नहीं प्राप्त किया जा सकता। यदि करोड़ों युग पत्थरों (मूर्तियों) की पूजा में गंवा लिए जाएं तो भी कोई आत्मिक प्राप्ति नहीं हो सकती। पत्थर की पूजा करने से आत्मिक जीवन में कामयाबी कैसे हासिल हो सकती है। हां यह ज़रूर है कि हमारी शक्ति फ़ज़ूल नष्ट होगी और हमारे बल की वृद्धि रुक जाएगी। इस निरर्थक कर्म से नव-निधि रूपी नाम-रस अथवा धर्म की सच्ची कमाई नहीं हो सकेगी। आज आज करते हुए हमारी बाकी बची आयु के वर्ष, महीने और दिन बीतते जा रहे है। उम्र पूरी होने जा रही है और अभी तक आत्मिक मार्ग की कोई सफलता नहीं मिल सकी, इस सब पर तुझे कोई लज्जा नहीं महसूस होती। हे अभिज्ञ मूर्ख इन्सान, तूने सर्व-सुन्दर एवं सर्व-शक्तिमान प्रभु का भजन नहीं किया और फज़ूल ही मत मतांतरों के अर्थ हीन कर्म काण्डों में ही सारी आयु गंवा रहा है।

सार—मूर्ति पूजा आदि निरर्थक सिद्धान्तों से आत्मिक जीवन में कुछ प्राप्त होने का नहीं।

(22)

जो जुग तैं करहै तपसा, कछु तोहि प्रसन्न न पाहन कै है॥
हाथ उठाय भली विधि सो जड़, तोहि कछू वरदान न दै है॥
कौन भरोस भयो एहि को, कहु भीर परी नहि आन बचै है॥
जान रे जान अजान हठी, एहि फोकट धरम सु भरम गवै है॥

शब्दार्थ—तैं = तू। **करहै** = करे, करता रहे। **तपसा** = तपस्या। **पाहन कै है** =पत्थरों से। **कछू वरदान** =कोई भी वरदान। **भली विधि** =अच्छी तरह से।

भरोस = भरोसे। **कौन भरोस** = कौन से भरोसे। **भीर** = कष्ट, विपत्ति। **जान रे जान** = समझ ले, समझ ले। **अजान** = मूर्ख, अज्ञानी। **हठी** = अड़ियल, ज़िद्दी। **सु भरम गवै हैं** = इन फ़ज़ूल भ्रमों में भटकाता है।

भाव—इस सवैये में गुरुदेव अन्यान्य मतों के अनेक निर्रथक सिद्धांतों तथा कर्मकाण्डों की आलोचना करते हुए धर्म का सीधा सुगम मार्ग स्पष्ट करते है।

हे अड़ियल, ज्ञान हीन, मूर्ख इन्सान, यदि तू सारा युग मूर्तियों को प्रसन्न करने के लिये तपस्या करता रहे अर्थात् भांति-भांति के कष्ट शरीर को इतने लम्बे समय तक देता रहे, तो भी तुझे इन पत्थरों (मूर्तियों) से कोई प्रसन्नता न मिल सकेगी। हे मूर्ख, ये पत्थर तुझे कभी भी भली-भांति हाथ उठा कर आत्मिक ओज और बल का वरदान न दे सकेंगे। इन पत्थरों (मूर्तियों) के कौन से भरोसे की आशा तूने लगा रखी है। तू यह क्यों नहीं मानता कि यदि तुझ पर कोई मुसीबत आएगी, तब पत्थरों की इन मूर्तियों ने आकर तेरी किसी प्रकार की कोई सहायता नहीं करनी। हे अज्ञानी और ज़िद्दी इन्सान, समझ ले और कुछ होश कर, मूर्ति पूजा और निर्रथक तपस्याओं के फोक्ट धर्म कर्मों के नियम तुझे व्यर्थ के भ्रमों में भटकाएंगे।

सार—गुरुदेव का मत मूर्ति पूजा और निर्रथक तपस्याओं को व्यर्थ मानता है।

(23)

जाल बंधे सबही मृतु के, कोऊ राम रसूल न बाचन पाये॥
दानव देव फनिन्द धराधर, भूत भविष उपाइ मिटाये॥
अन्त मरे पछताए पृथी पर, जो जग मैं अवतार कहाये॥
रे मन लैल अकेल ही काल के लागत काहे न पांयन पांये॥

शव्दार्थ—**मृतु** = मृत्यु, काल। **न बाचन पाये** = न बच सके। **राम** = श्री रामचन्द्र जी। **रसूल** = हज़रत मुहम्मद साहिब। **दानव** = दैत्य। **देव** = देवते। **फनिन्द** = नाग। **धराधर** = शेषनाग। **भूत** = भूतकाल के। **भविष** = भविष्य काल में होने वाले। **उपाइ** = पैदा किये। **लैल** = लल्लू, मूर्ख। **अकेल ही काल के** = एक अकाल पुरुष ईश्वर। **लागत काहे न पांयन** = चरणों पर क्यों नहीं पड़ता। **धाये** = दौड़ कर, शीघ्र ही।

भाव—गुरुदेव प्रस्तुत सवैये में समझाते हैं कि सारा संसार ही काल के जाल

में बुरी तरह फंसा पड़ा है। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह काल के स्वामी परमेश्वर की शरण ले और केवल मात्र उसी से सच्चा प्रेम करे। विश्व के सब जीव काल के जाल में बंधे पड़े हैं। यहां तक कि अवतार और पैगम्बर कहलाने वाली विभूतियां भी काल से अप्रभावित नहीं रह सकीं। श्री रामचन्द्र जी और हज़रत मुहम्मद साहिब जैसी हस्तियां भी काल के प्रभाव से बच न सकीं। भूतकाल में दैत्य, देवता, नाग, शेषनाग आदि अनेकों आकृतियां पैदा हुई और अन्त में विनाश हो गईं। आने वाले समय में भी अनेकों जीव पैदा होंगे और उनका भी देहावसान हो जाएगा। अनेकों हस्तियां जो अपने जीवनकाल में अवतार कहलातीं रहीं, परन्तु काल-जाल के घेरे में बंधे होने के कारण अन्त में इस पृथ्वी पर पछताते हुए काल का ग्रास बन गई। हे मूर्ख मन, तू काल-जाल में फंसे प्राणियों को छोड़कर एक मात्र परमेश्वर के चरणों में क्यों नहीं जा पड़ता जो सबका सृजणहार पालक और क्षय-कर्ता है। वहीं एक मात्र काल-जाल के प्रभाव से ऊपर है।

सार—गुरुमति में देवी-देवताओं, अवतारों व पैगम्बरों को यथा-योग्य पदवी ही दी गई है। गुरुमति के अनुसार उनको न तो अकाल पुरुष माना गया है और न ईश्वर ही। गुरुमति में केवल ईश्वर की आराधना पर बल दिया गया है और कृत्रिम प्राणियों और पदार्थों को रचियता नहीं रचियता की रचना-मात्र माना गया है।

(24)

काल ही पाये भयो ब्रह्मा, गहि दण्ड कमण्डल भूमि भ्रमानयो ॥
काल ही पाये सदा शिव जू, सब देश बिदेश भया हम जानयो ॥
काल ही पाये भयो मिट गयो जग, जाही ते ताहि सबै पहचानयो ॥
वेद कतेब के भेद सबै तजि, केवल काल कृपानिधि मानयो ॥

शब्दार्थ—काल = समय। **गहि** = पकड़ कर। **दण्ड कमण्डल** = डंडा और कमण्डल। **भूमि भ्रमानयो** = भूमि पर भटकता रहा। **देश बिदेश भया** = देश और विदेश में भटकता फिरता रहा। **भयो** = पैदा हुआ। **मिट गयो** = नाश हो गया। **जग** = जग में। **ताहि** = उस मालिक प्रभु को। **काल** = अकाल। **कृपानिध** = कृपा का भण्डार परमेश्वर।

भाव—इस सवैये द्वारा गुरुदेव यह समझाते हैं कि संसार की हर हस्ती यहां

तक कि अवतार पैगम्बर आदि कलहवाने वाले भी अन्त काल का ग्रास बनती है, अतः हमें एक मात्र हस्ती अकाल पुरुष, जो मृत्यु पर भी विजयी है, में ही पूर्ण आस्था रखनी चाहिये। समय चक्र के साथ ही संसार में ब्रह्मा जी पैदा हुए और अपना डंडा और कमण्डल लेकर संसार में भटकते रहे अर्थात् ब्रह्मा जी काल व मृत्यु से ऊपर न उठ सके। शिव जी भी काल को ही प्राप्त हुए, यद्यपि वे देशों-विदेशों में विचरते रहे और इस बात का भी हमें स्पष्ट ज्ञान है। संसार की सब हस्तियां काल अथवा समय के चक्र के साथ पैदा हुई और समय के प्रभाव से ही समाप्त हो गई। केवल इसी लिए ही संसार के लोगों ने एक मात्र हस्ती जो मृत्यु से रहित है, को पहचाना। गुरुदेव फुरमाते हैं कि इस लिए हमने वेद और कतेबों के भेदों का परित्याग कर के केवल मात्र मृत्यु-रहित हस्ती अकालपुरुष, जो कृपालु है, को ही मानने का निश्चय किया है।

सार—जो कभी पैदा हो, कभी मर जाये, वह परमेश्वर नहीं हो सकता। कोई भी हस्ती जो इतिहास अथवा मिथिहास की कथाओं द्वारा स्पष्टतः कभी पैदा हुई कभी मर गई, ईश्वर नहीं हो सकती।

(25)

काल गयो इन कामन सिउं, जड़ काल कृपाल हिये न चितारयो ॥
लाज को छाड़ निलाज अरे, तज काज अकाज को काज सवारयो ॥
बाजि बने गजराज बडे, खर को चढ़िबो चित्त बीच बिचारयो ॥
श्री भगवंत बजयो न अरे जड़, लाज ही लाज ते काज बिगारयो ॥

शब्दार्थ—काल गयो = उम्र बीत गई। **इन कामन सों** = इन सांसरिक काम धन्धों में। **जड़** = मूर्ख। **काल कृपाल** = अकाल पुरुष जो कृपालु है। **हिये** = हृदय में। **चितारयो** = स्मरण किया। **निलाज** = निर्लज्ज। **अकाज को काज** = निकम्मे निर्रथक काम। **बाजि** = घोड़े। **बने** = सजे हुए। **गजराज** = बढ़िया श्रेष्ठ हाथी। **खर को चढ़िबो** = गधे पर सवार होना। **चित्त** = ईश्वर। **लाज ही लाज** = शर्म ही शर्म में, लोक लाज के भय से।

भाव—प्रस्तुत सवैये में गुरुदेव यह समझाते हैं कि मनुष्य कभी यह विचार नहीं करता कि निकट भविष्य में या कुछ वर्षों में उसने अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होना है और न ही वह यह समझने का यत्न करता है कि कौन से काम उसके

लिए धर्मानुसार करने योग्य हैं और कौन से कर्म उसके करने योग्य नहीं है। धर्मानुसार अपना आचरण ढालते समय उसके रास्ते में एक और रुकावट आयी है जो है लोक-लाज का भय यदि मैंने ऐसा किया तो मेरी जाति बिरादरी मेरे बारे में क्या कहेगी, आदि।

गुरुदेव फुरमाते हैं कि हे मूर्ख मनुष्य, सांसारिक जंजालों और धन्धों में फंसा रह कर तेरी सारी आयु व्यतीत होती जा रही है और तू कृपालु अकाल पुरुष को हृदय में याद नहीं करता। इन्सान वास्तव में तो निर्लज्ज हुआ पड़ा है क्योंकि वह बड़े कीमती मनुष्य जन्म और जीवन को विषय विकारों में बर्बाद कर रहा है, परन्तु धर्मानुसार आचरण करते समय सदा ही लोक-लाज, बिरादरी, समाज और जाति में प्रचलित रीतियों-रस्मों की आड़ लेता है सतिगुरु कहते हैं कि निर्लज्ज इन्सान तू जाति-बिरादरी की निर्रथक लोक-लाज को त्याग दे। तू तो ऐसा करने योग्य कर्मों को त्याग कर और करने योग्य विवर्जित कर्मों को अपना कर वर्जित कर्मों और अधर्म का पक्ष ले रहा है। यह बात ऐसी है जैसे तेरे पास धर्म कर्म रूपी बड़े सुन्दर सजे हुए घोड़े और श्रेष्ठतर हाथी हों और उनको छोड़ कर निकृष्ट रूपी गधे की सवारी करने की बात ही अपने चित्त में ठानी हो। सत्य धर्म रूपी उत्तम पदार्थ की छोड़ कर तू हेच प्रकार के सांसारिक काम जो निषेध कर्म हैं, में फंसां हुआ है। हे मूर्ख अभिज्ञ इन्सान, तू सर्व सुन्दर प्रभु में प्रेम नहीं करता और लोक लाज के बहाने मनुष्य जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के काम को बिगाड़ रहा है।

सार—धर्म का अनुसरण करते समय जाति-बिरादरी और समाज के निर्रथक रीति-रिवाजों सम्बन्धी लोक लाज की परवाह नहीं करनी चाहिए। धर्म को अपनाते समय अपनी विवेक बुद्धि को जाग्रत कर लेना चाहिए ताकि धर्म के बाज़ार में व्यापार करते समय गधे-घोड़े में अन्तर का ज्ञान हो।

(26)

बेद कतेब पढ़े बहुते इन, भेद कछू तिनको नहि पायो॥
पूजत ठउर अनेक फिरयो, पर एक कभहिं हिय मैं न बसायो॥
पाहन को अस्थालय को सिर नयात फिरयो कछु हाथ न आयो॥
रे मन मूढ़ अगूढ़ प्रभू तजि, आपन हूढ़ कहा उरझायो॥

शब्दार्थ—ठौर = स्थान। **कभहिं** = कभी भी। **हिय** = हृदय। **पाहन को** = पत्थरों की मूर्तियों को। **अस्थालय** = मढ़ी, जहाँ अस्थियां और अवशेष गाड़े गये हों। **सिर न्यात फिरयो** = सिर नवाते फिरे। **अगूढ़** = स्पष्ट। **हूढ़** = मूर्खतापूर्ण ज़िद्दी अक्ल। **उरझायो** = उलझा पड़ा है।

भाव—इस सवैये में गुरुदेव ने यहां के दोनों प्रमुख मतों के अनुयायियों का चित्रण किया है जो हठ-वश अपने अनेकों मूर्खतापूर्ण विश्वासों में उलझे पड़े थे और स्पष्ट, प्रकट और स्वतः प्रकाशित को समझने में धोखा खा रहे थे।

गुरुदेव फुरमाते हैं कि इन दोनों मतों के अनुयायियों ने वेद-कतेब के आदि ग्रन्थों का अध्ययन तो बहुत कर रखा है, परन्तु अपनी साम्प्रदायिकता और तअस्सुब के कारण परमेश्वर की असलियत को नहीं समझ सके। इन लोगों ने अनेकों ऐसे स्थान निश्चित किये हैं जिनको ये पवित्र मानते हैं और उन स्थानों को विशेष महत्त्व देते हुए उनकी पूजा करते चले जा रहे हैं, परन्तु वे एक मात्र परमेश्वर को अपने हृदय में बसाने के लिए तैयार नहीं। या तो ये मनुष्य पत्थरों से निर्मित मूर्तियों को ईश्वर समझ कर सिर नवाते चले जा रहे हैं या किसी मर चुके व्यक्ति की राख और अस्थियों के ढेर पर निर्रथक-सी मढ़ी बना कर उसके सामने माथा नवाते चले जा रहे हैं। वास्तव में फज़ूल में भ्रमों को छोड़ कर कोई तत्त्व वस्तु इन अविवेकी पुरुषों के हाथ नहीं लग रही। गुरुदेव ऐसे दुर्बुद्धि जीवों को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि हे मूर्ख मन, तू स्पष्ट, प्रकट और स्वतः प्रकाशित प्रभु को छोड़ कर अपने मूर्खता भरे विश्वासों और विधि विधानों में क्यों उलझा पड़ा है।

सार—धर्म पुस्तकों का केवल मात्र पठन-पाठन प्रभु की प्राप्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। विवेक बुद्धि से उनका विचार और उनके अनुसार आचरण बहुत ज़रूरी है। तीर्थ यात्रा मात्र करना नेक अमल न करना धर्म नहीं कहला सकता। मूर्ति पूजा धार्मिक कर्त्तव्य नहीं है। मढ़ियों की पूजा केवल मूर्खता और दुर्बुद्धि का दूसरा नाम है, मढ़ी चाहे किसी की भी क्यों न हो।

(27)

जो जुगियान को जाय उठ आश्रम, गोरख को तिह जाप जपावै॥
आय सन्यासिन के तिह को कहि, दत्त ही सत्य है मन्त्र द्रिढ़ावै॥
जो कोऊ जाय तुरकन्न में, महि दीन के दीन तिसै गहि ल्यावै॥
आपहिं बीच गनै कर्त्ता, कर्त्तार को भेद न कोऊ बतावै॥

जो करि सेव मसन्दन की, कहै आनि प्रसादि सबहि मोहि दीजै ॥
जो किछु माल तवालय में, सो अबहि उठि भेंट हमारी ही कीजै ॥
मेरों ही ध्यान धरो निस बासर, भूल कै और को नाम न लीजै ॥
दीन्हें के नाम सुने भजि रातहि, लीन्हें बिना नहि नैक प्रसीजै ॥

शब्दार्थ—**आनि प्रसादि** = प्रसाद लाकर, सब प्रकार का माल लाकर । **तवालय** = तुम्हारे घर । **निस-बासर** = रात दिन । **दीन्हें के नाम** = नाम देने (मिलने) की ख़बर । **भजि रातहिं** = रात को ही भाग खड़ा होता है । **लीन्हे बिना** = दान लिये बिना । **नैक** = रंचक मात्र, थोड़ा-सा भी । **पसीजै** = राज़ी होगा, प्रसन्न होगा ।

भाव—प्रस्तुत सवैये में धर्म के नाम पर धन-जायदाद आदि एकत्र करके खा पी जाने वाली श्रेणी का चित्रण किया गया है । यह श्रेणी सदैव किसी न किसी ढंग से जनता को ठग कर उनका ख़ून चूसती रही है ।

गुरुदेव समझाते हैं कि यदि कोई इन धर्म के ठेकेदार मसन्दों की ओर सेवा भाव से आगे बढ़े तो ये धर्म के ठेकेदार ऐसे लोगों के कल्याण के लिए अजीब-अजीब नुस्खे पेश करते हैं । सर्वप्रथम तो वे ऐसे श्रद्धालुओं से यह कहेंगे कि आप सारा माल धन उनको अर्पण कर दें । मसन्द वर्ग की यह तीव्र इच्छा होती है और इस इच्छा को वे बेखटके प्रकट भी कर देते हैं कि हे श्रद्धालु, जो माल धन तेरे घर में है अर्थात् जो कुछ भी तू दे सकता है, उसे अभी ही अविलम्ब हमें अर्पित कर दे । सतिगुरु व्यंग्य के साथ मसन्दों की इच्छा को प्रकट करते हुए कहते हैं कि हे श्रद्धालु-गण, आप दिन-रात मेरी शक्ल चरणों का ध्यान ही मन में लगाया करो और भूल कर भी मुझे छोड़ और किसी का ध्यान मन में न टिकाओ । मसन्दों का पूर्ण स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इन दुष्ट मसन्दों को कहीं से कुछ माल ऐंठने की खबर मिल जाये अर्थात् इनको पता चल जाये कि कहीं कोई श्रद्धालु कुछ दान देने की सोच रहा है तब ये मसन्द सूर्योदय भी नहीं होने देंगे और रात को ही ऐसे श्रद्धालु से माल ऐंठने के लिए भाग खड़े होंगे और जब तक श्रद्धालु से अपनी इच्छा अनुसार माल प्राप्त न कर लेंगे, शान्ति से नहीं बैठेंगे ।

सार—पाखण्डी सन्त-साधु और धर्म स्थानों के पुजारी व प्रबन्धक, जिनका निशाना धन एकत्र करना और लोगों को मूर्ख बना कर अपना घर भरना है, ही

असल मसन्द हैं। जो गुरुद्वारों का पैसा हड़प जाये, वह सिख नहीं, मसन्द है। गुरुद्वारों और अन्य धर्म स्थानों में भेंट किये धन का धर्म-प्रचार के लिए सदुपयोग होना चाहिये।

(30)

आंखन भीतर तेल को डारि, सु लोगन नीर बहाय दिखावै ॥
जो धनवान लखै निज सेवक, ताहि परोस प्रसादि जिमावै ॥
जो धनहीन लखै तिह देत न, मांगन जात मुखौ न दिखावै ॥
लूटत है पशु लोगन को, कबहू न परमेशर के गुण गावै ॥

शब्दार्थ—डारि = डाल कर। **ताहि** = उसको। **परोस प्रसादि** = पकवान परोस कर। **जिमावै** = खिलाता है। **तिह देत न** = उसको कुछ नहीं देता।

भाव—इस सवैये में ऐसे मनुष्यों का चित्रण किया है जो धर्म के नाम पर अपने स्वार्थों को पूरा करते हैं और वास्तव में बनारस के ठग होने के बावजूद अपने आपको सन्त, साधु या धार्मिक नेता प्रकट करने का पाखण्ड करते हैं। सात्विक धार्मिक जीवन के साथ इनका कोई सम्बन्ध नहीं, वे केवल मात्र अपना उल्लू सीधा करना जानते हैं। गुरुदेव कहते हैं कि ऐसे तथा-कथित धार्मिक नेता अपनी आंखों में तेल डाल कर लोगों को धोखा देने के लिए बनावटी आंसू निकाल कर लोगों को भ्रम में डालते हैं। उनका यह दिखावटी रोना, रोना नहीं होता। उनकी दिखलावे की हमदर्दी, वास्तविक हमदर्दी नहीं होती। उनकी ओर से कोई भला काम होता प्रतीत हो, तो वह काम भी भला नहीं होता क्योंकि ये बाहर से कुछ और होते हैं और भीतर से कुछ और। यदि इन्हें कोई ऐसा चेला फंसता नज़र पड़े, जो धनवान है तब यह उसके साथ इतना स्नेह जतलाएंगे कि कुछ पूछो ही नहीं। उसे वे अपने हाथ से थाली परोस कर भोजन कराएंगे परन्तु यदि इनके डेरे पर कोई निर्धन चला जाये और ऐसे तथा-कथित साध-सन्त अथवा गुरु बने हुए व्यक्ति को अपनी निर्धन अवस्था में दृष्टिगोचर हो जाये तो उसका स्वागत करने के लिए या उसे कुछ देने के लिए तैयार न होंगे। यहां तक कि यदि कोई ज़रूरतमन्द निर्धन व्यक्ति कुछ आशा रख कर इनके डेरे पर चला जाये तो ये लोग अपनी शक्ल दिखाने को भी तैयार नहीं होते और कहला भेजेंगे कि अभी सन्त जी के पास समय नहीं। ऐसे सन्त और गुरु बन बैठे प्राणी वास्तव में इन्सान

शब्दार्थ—**जुगियान को** = योगियों के। **गोरख को जाप** = गोरख का जाप। **सन्यासिन के** = सन्यासियों के डेरे पर। **दत्त** = दत्तात्रेय, सन्यासी सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक जिसे सन्यासी अवतार करके मानते हैं जो त्रेता युग में हुआ बतलाया जाता है। इसने चौबीस गुरु धारण किये थे। **तुरकन में** = तुर्कों में, मुसलमानों में। **महिदीन के दीन** = हज़रत मुहम्मद के मज़हब में। **गहि** = पकड़ कर। **आपहि बीज गनै कर्त्ता** = अपने आप में ही परमेश्वर को मान रहे हैं।

भाव—इस सवैये में गुरुदेव फुरमाते हैं कि विभिन्न मत-मतान्तरों के प्रचारक व पैरोकार तअस्सुब में आकर केवल मात्र अपने मत के प्रसार के लक्ष्य को पूरा करने के लिए सोचते हैं। कोई ठोस जीवन ढंग सिखलाने के स्थान पर वे जिज्ञासुओं को अपने मत विशेष में शामिल करना चाहते हैं।

यदि कोई व्यक्ति योगियों के डेरे पर जाता है, तब योग मत के आचार्य उसको गुरु गोरख नाथ के नाम का जाप व उसका ध्यान लगाने का उपदेश करते हैं। यदि कोई जिज्ञासु सन्यासियों के अड्डे पर पहुंच जाए, तो वे लोग उसे यह उपदेश देते हैं कि उनके मत का प्रवर्त्तक दत्तात्रेय ही सच्चा और सही है, अन्य सब गलत हैं। इस प्रकार जब सत्य की खोज में लगा कोई जिज्ञासु मुसलमान प्रचारकों व अनुयायियों के काबू आ जाए, तब उनका यही यत्न होता है कि इस नये व्यक्ति को हज़रत मुहम्मद साहब के मज़हब में शामिल कर लिया जाए। मुश्किल यह है कि भिन्न प्रकार के मत-मतान्तर सृष्टि के रचियता ईश्वर का वास्तविक रूप समझाने के लिए तैयार नहीं और उसके स्थान पर अपने मत या मज़हब विशेष के प्रवर्त्तक या बानी को ही सृष्टि का कर्त्ता अथवा रचियता के रूप में पेश करते जा रहे हैं।

सार—अनेकों मत मतान्तरों के अनुयायी अथवा पैरोकार तअस्सुब की भावना में आ कर अपने मत का प्रचार व प्रसार तो बहुत करना चाहते हैं परन्तु जिज्ञासुओं को गलत बातों व विश्वासों में उलझा कर परमेश्वर की वास्तविकता को स्पष्ट नहीं करते और न ही उन्हें सही जीवन-ढंग का मार्ग निर्देशन ही करते हैं।

(28)

जो जुगियान कै जाय, कहै सब जोगिन को गृह माल उठै दै॥
जो परै भाज सन्यासिन कै, कहैं दत्त के नाम पै धाम लुटै दै॥

जो कर कोऊ मसन्दन सो, कहै सर्व दर्ब लै मोहि अबहि दै ॥
लेहु ही लेहु कहै सब को नर, कोऊ न ब्रह्म बताय हमहि दे ॥

शब्दार्थ—**जुगियान कै** = योगियों के। **जोगिन को गृह** = योगियों के डेरे पर। **सब माल उठै दै** = सारा माल उठा कर पहुंचा दे। **जो परै भाज** = यदि दौड़ कर पहुंचे। **मसन्दन सों** = मसन्दों को। **सर्ब द्रव्य** = सारा धन। **मोहि** = मुझे। **अबहि** = अभी ही। **लेहु ही लेहु** = भगवान ले लो, भगवान ले लो। **सब को नर** = हर कोई आदमी, प्रत्येक व्यक्ति। **कोऊ** = कोई भी। **ब्रह्म** = ईश्वर।

भाव—प्रस्तुत सवैये में गुरुदेव बतलाते हैं कि जब कभी कोई जिज्ञासु प्रभु की खोज में विभिन्न मत-मतान्तरों के "महात्मा-जनों" के पास पहुंचता है, तो ये नाम-निहाद महात्मा उससे अपना स्वार्थ तो पूरा कर लेते हैं और उसे विभिन्न प्रकार के अन्ध-विश्वासों में डाल कर गुमराह कर देते हैं।

जब जिज्ञासु योग मत वालों के पास प्रभु की खोज के लिए जाता है तब योगी उसे प्रभु के बारे में ज्ञान देने के स्थान पर यह कहते हैं (अथवा उनका ऐसा यत्न होता है) कि तुम अपना सारा माल उठवा कर योगियों के डेरे में पहुंचा दो। यदि जिज्ञासु भाग कर सन्यासियों के डेरे में पहुंचता है तो वहाँ से उसे यह संदेश मिलता है कि तुम योग मत के प्रवर्तक दत्तात्रेय के नाम पर अपना घर लुटा दो। यदि कोई श्रद्धालु प्रभु की खोज करता हुआ मसन्दों के पास आ पहुंचता है तब उसे यह सुनने को मिलता है कि तुम सर्वप्रथम अपना सब धन-पदार्थ उनके हवाले कर दो।

सब मत-मतान्तरों के प्रचारक और पैरोकार यह दावा करते दृष्टिगोचर होते हैं कि आओ, हमारे पास पाओ और हमसे भगवान ले लो परन्तु वास्तव में इस अभागे जिज्ञासु को ये लोग परमेश्वर के बारे में सही जानकारी नहीं देते।

सार—निरर्थक मत-मतान्तरों के अनेकों दावे अर्थहीन और बे-बुनियाद हैं। धर्म के नाम पर दम्भ करने वाले धर्म के अनेकों ठेकेदार प्रभु का ज्ञान देने के स्थान पर लोगों को धोखा देकर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं।

नहीं, पशु हैं और बुद्धिहीन हैं। हां ये लोग जनता को धोखाधड़ी से लूटने की कला में निपुण हैं और जनता को धड़ाधड़ लूट रहे हैं। वे परमेश्वर की स्तुति का गायन करने के लिये और सच्चे इन्सानी जीवन के लिये तैयार नहीं।

सार—तथाकथित सन्त-साधु और देह पूजा में उलझाने वाले गुरु वास्तव में अपने स्वार्थ को पूरा करने वाले धर्महीन व्यक्ति हैं और इनकी धोखेबाज़ी की मनोवृत्ति के कारण इनका धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता।

(31)

आंखन मीच रहै बक् की जिम, लोगन एक प्रपंच दिखायो॥
नियात फिरयो सिर वधिक् ज्यों, असि ध्यान बिलोकि बिड़ाल लजायो॥
लागि फिरयो धन आस जितै, तित लोक गयो परलोक गवायो॥
श्री भगवंत भजियो न अरे जड़, धाम के काम कहां उरझायो॥

शब्दार्थ—मीच रहै = बन्द कर रहा है, मून्द रहा है। **बक् की जिम** = बगले की तरह। **नियात फिरयो** = नवाता फिरता, झुकाता फिरता। **वधिक् ज्यों** = शिकारी की तरह। **असि ध्यान** = इस प्रकार का दिखावे का ध्यान। **बिलोकि** = देख कर। **बिड़ाल** = बिल्ला। **लजायो** = लज्जित हुआ। **धन आस** = धन प्राप्त करने की आशा या इच्छा। **लाग फिरयो** = (धन की आशा) लिए फिरते हैं। **जितै** = जहां। **तित** = वहां। **धाम के काम** = सांसारिक काम धंधों में।

भाव—प्रस्तुत सवैये में गुरुदेव उन लोगों का चरित्र चित्रण करते हैं जो बाहरी वेश-भूषा तो धार्मिक व्यक्तियों जैसी धारण कर रहे हैं, परन्तु जिनका वास्तविक आचरण धोखे, फ़रेब और मक्कारी से परिपूर्ण है। उनका प्रमुख उद्देश्य और तीव्र लालसा तो बस धन एकत्र करना ही है।

गुरुदेव कथन करते हैं कि इस प्रकार के व्यक्ति अजीब तमाशा दिखा रहे हैं। ये लोक भक्ति का नाटक करने के लिए बगुले की तरह आंखें मूंद कर दिखाते हैं। जैसे बगुला अपने शिकार मेंढक या मछली को फंसाने के लिए अपनी आंखें मूंद लेता है, परन्तु उसका असल ध्यान तो अपने शिकार पर ही केन्द्रित रहता है, इसी प्रकार कुछ फरेबी लोग आंखें मूंद कर ऐसा प्रकट करते हैं कि वे प्रभु की भक्ति कर रहे हैं, परन्तु वास्तव में ये लोगों को धोखा दे रहे होते हैं ताकि लोग

और सुगमता से उनके जाल में फंसे। ये लोग झुकते भी हैं अर्थात् नम्र भाव का प्रदर्शन करते हैं किन्तु उनकी यह नम्रता भी लोगों को अपने जाल में फंसाने की एक चाल ही होती है। शिकारी धनुष से बाण छोड़ते समय झुकता है। वास्तव में वह शिकार पर सफल वार करने के लिए झुकता है। बिल्कुल इसी प्रकार ये लोग विनम्र रूप बना कर लोगों को लूटने की चाल ही चलते हैं। ऐसे धोखेबाज़ व्यक्तियों की ख़तरनाक चाल को देख कर चालबाज़ बिल्ला भी लजा जाता है अर्थात् उसकी चाल भी मात खा जाती है। जहां कहीं भी केवल धन एकत्र करने की आशा से ऐसे व्यक्ति घूमते फिरते हैं, वहां यह समझ लेना चाहिए कि वे अपना लोक परलोक दोनों गंवा रहे हैं। गुरुदेव उनको सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे पत्थर-चित्त मूर्खों, उस परमेश्वर को सच्चे मन से याद करो। अनात्मिक इच्छाओं के पीछे लग कर सांसारिक धन्धों में क्यों उलझे पड़े हो।

सार—बाहरी रूप अथवा वेश-भूषा द्वारा अपने आप को भक्त या धार्मिक व्यक्ति प्रकट करना और मन लोभ-मोह आदि विकारों में आसक्त रखना सिख धर्म के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध बात है।

(32)

फोकट कर्म दृढ़ात कहा, इन लोगन को कोई काम न ऐ है॥

भाजत का धंन हेत अरे, जम किंकर ते नहि भाजन पै है॥

पुत्रः कलत्र न मित्र सबै, ऊहां सिख-सखा कोऊ साखि न दै हैं॥

चेत रे चेत अचेत महा पशु, अन्त की बार अकेलो ही जै है॥

शब्दार्थ—फोकट कर्म = निर्रथक धार्मिक कर्म और रीतियां। **दृढ़ात** = सिखा रहे हो। **कहा** = क्यों। **भाजत का धन हेत** = धन के लिए क्यों मारा मारा भाग रहा है ? **जम किंकर** = यमदूत। **नहि भाजन पै है** = नहीं भाग सकेगा। **कलत्र** = स्त्री। **ऊहां** = वहां। **सिख** = चेला। **सखा** = मित्र। **साखि** = साक्षी, गवाही।

भाव—इस सवैये में गुरुदेव उन नाम-निहाद धार्मिक नेताओं के आचरण का भण्डा-फोड़ करते हैं जो भोले-भाले श्रद्धालुओं को निर्रथक कर्म-काण्डों में उलझा रखते हैं और जिनका एक मात्र लक्ष्य अपने लिए अधिक से अधिक धन एकत्र करना होता है। ऐसे लुटेरे पुरोहितों और धार्मिक नेताओं को गुरुदेव सख्त चेतावनी देते हैं।

गुरुदेव कहते हैं कि मूर्ख और लुटेरे पुरोहितों, लोगों को निरर्थक कर्म-काण्डों के चक्कर में क्यों पक्का कर रहे हो, जैसे संक्रांति, पूर्णिमा, अमावस्या आदि को पवित्र और विशेष दिन मानना, व्रत उपवास करना, यज्ञ, बलिदान आदि करना, धार्मिक ग्रन्थों के दाम दे कर पाठ करवाना और उनका महात्म्य खरीदने की कामना करना, मर चुके पुरखों के लिए श्राद्ध करवाना, तीर्थ स्नान करना, मूर्ति पूजा के कर्म में उलझाना आदि। गुरुदेव कहते हैं कि इन कर्म-कांण्डों में से कोई एक भी कर्म किसी श्रद्धालु के काम नहीं आएगा और इनका कोई परमार्थ भी नहीं। हे पुरोहितो, तुम धन-माल एकत्र करने के लिए क्यों इतनी भाग-दौड़ में पड़े हो। जब तुम्हारा देहान्त होगा, उस समय तुम यमदूतों से न बच पाओगे और हेराफेरियों द्वारा एकत्र किया बुम्हारा सब धन यहीं रह जाएगा। हेराफेरियों द्वारा लोगों के माल से गुलछर्रे उड़ाने वाले हे पुरोहित, तेरे कर्मों का हिसाब-किताब लगते समय प्रभु के दरबार में तेरी स्त्री, तेरे पुत्र, तेरे मित्र, तेरे चेले-चांटे और हेराफेरी द्वारा एकत्र किये गये माल के तेरे हिस्सेदार साथी तेरी सहायता न कर सकेंगे और न ही तेरी ईमानदारी की साक्षी भर सकेंगे। हे पशु-सदृश मदहोश मूर्ख पुरोहित, तू होश कर, तू संसार से बिल्कुल अकेला ही जायेगा और अपने किए गए भले बुरे सब कर्मों के फल तुझे अकेले ही भुगतने पड़ेंगे।

सार—समाज का पुरोहित वर्ग सदा ही लोगों को निरर्थक कर्म काण्डों में उलझाता रहा है। गुरुदेव का मत किसी कीमत पर भी पुरोहित वर्ग के माया जाल की हिमायत नहीं करता। सिख मत को मानना और पुरोहितपन दो अलग-अलग जाति नसल की चीज़ें हैं।

(33)

तव तन त्यागत ही सुनि रे जड़, प्रेत बखान त्रिया भजि जै है॥
पुत्र कलत्र सुमित्र सखा, एहि बेग निकारो आयसु दै है॥
भवन भंडार धरा गड़ जेतक, छाड़त प्राण बिगान कहै है॥
चेत रे चेत अचेत महां पशु, अन्त की बार अकेलो ही जै है॥

शब्दार्थ—तव = तेरा। **कलत्र** = स्त्री। **सुमित्र** = अच्छे मित्र। **एहि बेग** = इसी समय, शीघ्र ही। **निकारो** = निकालो। **आयसु** = आज्ञा, मश्वरा। **भण्डार** = खज़ाना। **धरा गड़** = गाड़ कर रखा है। **जेतक** = जितना भी। **बिंगान** = दूसरों का, बिगाना। **चेत** = होश कर, विचारपूर्वक सोच। **अचेत** = मूर्ख।

भाव—मनुष्य संसार में जन्म ले कर भगवान को याद करने के लिए तैयार नहीं होता और न ही सदाचारी जीवन व्यतीत करने को राज़ी होता है। इससे उल्ट वह सांसारिक पदार्थों के मोह में बुरी तरह जकड़ा हुआ होता है जो वास्तव में उसके काम नहीं आते क्योंकि ये पदार्थ और सम्बन्धी सदैव साथ निभाने के स्वभाव से रिक्त होते हैं।

गुरुदेव फुरमाते हैं कि हे मूर्ख व्यक्ति तेरे मरने के एक दम बाद तेरी स्त्री भी (जिसके प्रेम-पाश में तू बुरी तरह जकड़ा पड़ा है) तुझे प्रेत कह कर तेरा साथ छोड़ जाएगी। ऐसे अवसर पर तेरे पुत्र, स्त्री, जिगरी दोस्त और जीवन में मिले अनेकों प्रकार के साथी, सब ही तेरा साथ छोड़ जाएंगे और सब मिल कर मश्वरा देंगे कि तेरे मुर्दा शरीर को शीघ्र ही घर से निकाल कर श्मशान घाट की ओर ले जाया जाए और जला दिया जाए। स्पष्ट तौर पर वे सब तुझ से अपना मोह-प्यार और नाता तोड़ लेंगे। तू ने संसार में बड़े मज़बूत भवन और इमारतें निर्मित की हैं, बहुत खज़ाने एकत्र कर रखे हैं, संसार के अन्य लोगों की नज़रों से बचा कर बहुत कुछ तूने ज़मीन के नीचे गाड़ रखा है, परन्तु हे मूर्ख इन्सान, तेरे शरीर से तेरे प्राण अलग होते ही ये सब चीज़ें तेरी नहीं रहेंगी और इनके स्वामी या मालिक बदल जाएंगे। हे पशु रूपी मूर्ख मदहोश इन्सान, तू होश कर, जीवन के अन्त हो जाने पर तेरे जीव को अपने भले-बुरे कर्मों का फल अकेले ही भुगताना पड़ेगा और ये धन-पदार्थ और रिश्तेदार सम्बन्धी कोई भी साथ न निभाएंगे।

सार—संसार और शरीर नाशवान है। संसार में सदाचारी जीवन और भगवान की भजन बन्दगी वाला जीवन न अपना कर धन-पदार्थों और रिश्तेदारियों के मोह-पाश में फंसना उचित नहीं। केवल सांसारिक प्राप्तियों वाला जीवन जीना अभीष्ट नहीं।

□□□